ॐ

भलेका भला और बुरेका बुरा

[पढ़ो, समझो और करो,

भाग ५]

गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

भलेका भला और बुरेका बुरा

[पढ़ो, समझो और करो,

भाग ५]

भले० बुरे० १-२—

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०२५ से २०४१ तक		८५,०००
सं० २०४५	छठवाँ संस्करण	२५,०००
		कुल १,१०,०००
		एक लाख दस हजार

मूल्य दो रुपये

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर

*

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

यह 'पढ़ो, समझो और करो' का पाँचवाँ भाग 'भलेका भला और बुरेका बुरा' नामसे प्रकाशित हो रहा है। इसमें भी ऐसे बहुत-से महत्त्वपूर्ण सच्चे घटनाप्रसङ्गोंका वर्णन है, जिनमें सच्ची मानवताके दर्शन होते हैं और जिनके अनुसार जीवनका निर्माण करनेपर अपने एवं दूसरोंके लिये मनुष्य सच्ची तथा अचल सुख-शान्तिका पथप्रदर्शक बन सकता है और स्वयं परम सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है। इस पुस्तकके अध्ययन, मनन और प्रचारके द्वारा पाठकोंको अपना तथा दूसरोंका कल्याण-साधन करना चाहिये।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

सम्पादक

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या



॥ श्रीहरिः ॥

भलेका भला और बुरेका बुरा

[पढ़ो, समझो और करो, भाग ५]

पतिव्रता देवीका बुद्धिमत्तापूर्ण आदर्श साहस और त्याग

इन त्यागमयी बुद्धिमती सती वीराङ्गनाका नाम था सुश्रीशान्तिदेवी। इनके पिता लाला श्रीरेवतीप्रसादजी अग्रवाल, कस्बा खानपुर, जिला बुलन्दशहरके एक सम्मानित व्यवसायी हैं। आपके भाई लखनऊमें व्यवसाय करते हैं। आपका विवाह बुलन्दशहर जिलेके औरंगाबाद स्थानके लाला श्रीबाबूरामजीके सुपुत्र श्रीजगदीशप्रसादजी एम० ए०, एल्-टी० महोदयके साथ हुआ था।

श्रीजगदीशप्रसादजी कस्बा खानपुरके माध्यमिक विद्यालयमें प्रधानाचार्यके पदपर कार्य करते थे। किसी स्वार्थभरे कारणसे कुछ लोग इनसे विरोध करने लगे। एक बार श्रीजगदीशप्रसाद सपत्नीक बैलगाड़ीद्वारा अपने निवासस्थान औरंगाबादसे खानपुरको जा रहे थे। मार्गमें कुछ लोगोंने गाड़ी रोककर प्रधानाचार्यजीपर लाठियोंसे प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। श्रीमती शान्तिदेवी अपने पतिके

ऊपर लेट गयीं। उन लोगोंने कहा—'बहनजी ! आप अलग हो जाइये' हमारा वैर तो इन प्रिंसिपल साहबसे है।' इसपर श्रीमती शान्तिदेवीने उनको फटकारते हुए कहा—'नराधमो ! लज्जा नहीं आती, मुझको बहन भी कहते हो और उस बहनके ही जीवनसर्वस्व एवं इष्टदेवपर प्रहार करनेको तुले हो ? जबतक मुझे मार न डालोगे, तुम इनके शरीरको छू भी नहीं सकते।' उनके इस उत्तरने उनको निरुत्तर कर दिया और वे तुरंत वहाँसे चले गये। इस प्रकार वीराङ्गनाने पतिके प्राणोंकी रक्षा की।

गत दो फरवरी सन् १९५९ को एक बड़ी अद्भुत घटना हुई, जिसने श्रीमती शान्तिदेवीको चिर-स्मरणीय बना दिया। उस घटनासे यह पूर्णरूपसे प्रकट हो गया कि ये देवी कितनी प्रत्युत्पन्नमति, त्यागमयी, साहसमयी पतिव्रता एवं ईश्वरनिष्ठ थीं। रात्रिके समय लगभग पचीस-तीस शस्त्रधारी व्यक्तियोंने प्रधानाचार्य महोदयके निवासस्थानपर छापा मारा। प्रधानाचार्यजी खानपुरके माध्यमिक विद्यालयमें ही ऊपर रहते थे। विद्यालयमें उस समय दो-तीन चपरासी तथा तीन अध्यापक थे। गिरोहके व्यक्तियोंने आते ही चपरासी तथा अध्यापकोंको डरा-धमकाकर आतङ्कित कर दिया कि जो जहाँ है वहीं पड़ा रहे, अन्यथा प्राणोंसे हाथ धोने पड़ेंगे। इसके पश्चात् वे लोग सीढ़ियोंके द्वारा ऊपर गये और प्रधानाचार्य महोदयके कमरेके किवाड़ खटखटाने लगे। पूछनेपर बताया कि 'हम आपको मारने आये हैं।'

प्रधानाचार्य महोदयने कहा—'यह तो कायरपन है कि आप

इतने लोग मिलकर एक निहत्थे व्यक्तिको मारने आये हैं। मैंने तो ऐसा कोई बुरा काम भी नहीं किया है। अच्छा मैं किवाड़ खोलता हूँ और यह सीना आपके सम्मुख है। आप गोली मार सकते हैं।'

उनकी पत्नी शान्तिदेवीने उनको कुछ रुकनेके लिये कहा और जो नये-पुराने कपड़े मिले, उनको तुरंत मिट्टीके तेलमें भिगो लिया। अब किवाड़ खोलनेको कहा। किवाड़का खुलना था कि दो व्यक्तियोंने एक ही साथ दो फायर प्रधानाचार्य महोदयपर किये। भगवान्का विधान, दोनों ही गोलियाँ उनके बगलसे निकल गयीं। अब एक फायर पिस्तौलद्वारा करनेका प्रयत्न किया, परंतु पिस्तौल चली नहीं। प्रधानाचार्य महोदय अचेत होकर गिर पड़े। उनकी बुद्धिमती साहसमूर्ति पत्नीने तेलसे भीगे कपड़े जला-जलाकर इस तेजीसे डाकुओंपर फेंकने प्रारम्भ किये कि उनसे भागते ही बना। इस बीचमें प्रधानाचार्यको चेत हो गया था। शान्तिदेवीने अपने पतिको पीछे हटा दिया और दृढ़तापूर्वक उनको आगे बढ़नेसे तथा बोलनेसे रोक दिया। प्रधानाचार्य महोदयका कथन है कि 'ऐसा अपूर्व तेज मैंने अपनी पत्नीमें इससे पहले कभी नहीं देखा था और इस समय मैं उनका आदेश माननेको बाध्य हो गया।' वह भागते हुए डाकुओंपर और भी द्रुतगतिसे जलते कपड़े फेंकने लगीं। डाकू बिल्कुल घबरा गये और बोले कि 'यह स्त्री साधारण नहीं है—साक्षात् दुर्गा है। यह तो हमलोगोंको भस्म ही कर देगी।' वे लोग वहाँसे भग गये और जबतक गाँवके चार-पाँच सौ मनुष्य आये, एक भी डाकू वहाँपर नहीं था। अर्द्धरात्रिके समय संनाटेमें नगरसे

बहुत दूर तीस-पैंतीस सशस्त्र निर्मम डाकुओंका केवल अपना सूझ-बूझके तथा साहसके बलपर भगवान्‌के सहारे एक निहत्थी अबलाद्वारा सामना किया जाना तथा उन्हें वहाँसे भागनेपर विवश कर देना साधारण बात नहीं है। यह उस देवीके आदर्श पति-प्रेम, सूझ और साहसका परिचायक है। वह सच्ची सती थी और इसी कारण उसमें वह तेज प्रकट हुआ।

परंतु यह त्याग सहसा लोकदृष्टिमें हो गया दुःखान्त। यद्यपि उस देवीके लिये तो यह गौरवकी चीज हुई। उसका समर्पण यज्ञ पूर्ण हो गया। बात यह हुई कि डाकुओंपर कपड़े फेंकते समय तेलके छींटे उनके ऊपर भी पड़ गये थे और वे जब लौट रही थीं, उनकी साड़ीमें आग लग गयी। आग जोर पकड़ गयी। उनके स्वामी तथा दशवर्षीय पुत्रने आग बुझानेका बहुत प्रयत्न किया, उन लोगोंके हाथ जल भी गये और किसी तरह आग बुझी; परंतु उस समयतक वे बुरी तरह झुलस गयी थीं। मोटरद्वारा उन्हें बुलन्दशहर अस्पतालमें पहुँचाया गया। इतनी जली होनेपर भी उन्होंने किसीका सहारा लेना पसंद नहीं किया और स्वयं मोटरपर जा बैठीं। उनका शरीर इतना जल गया था कि कहींपर इन्जेक्शनतक नहीं लगाया जा सकता था। बड़ी तत्परतासे उपचार किया गया, परंतु उस सतीको इस नश्वर संसारमें रोका नहीं जा सकता। जलनेके पचास घंटे पश्चात् वे इस नश्वर शरीरका त्याग करके दिव्यलोकको चली गयीं।

अन्त समयतक उनकी पतिभक्ति और ईश्वर-निष्ठा उनमें दीप्तिमान् रही। मृत्युशय्यासे भी वे अपने पतिकी ही ओर देखती

रहीं तथा उन्हींको अपने पास उन्होंने बैठने दिया। मृत्युके नौ घंटे पूर्वसे रामायणका मौखिक पाठ प्रारम्भ किया जो अन्त समयतक चलता रहा। प्रत्येक दोहेके अन्तपर वे 'सियावर रामचन्द्रकी जय शरणम्। सियावर रामचन्द्र पतिपद शरणम्' का घोष करती थीं। इसी अवस्थामें ब्राह्ममुहूर्तमें प्रातःकाल पाँच बजे उनकी अमर आत्माने इस नश्वर शरीरको त्याग दिया। बहुत सम्मानके साथ उनकी अरथी निकाली गयी, जिसमें हजारों व्यक्तियोंने भाग लिया। नगरके अनेक सम्मानित व्यक्तियोंने मृतात्माको श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं। ऐसी देवियाँ ही भारतकी परम गौरवमयी सांस्कृतिक परम सम्पत्ति हैं।

—रघुवरदयाल गोयल

हककी रोटी

सात-आठ वर्ष पहलेकी बात है। उस समय देशमें कपड़ेका राशनिंग था और कार्डसे कपड़ा मिल सकता था। जेतपुरमें ऐसी एक दूकानपर एक भाई कपड़ा बेचा करते थे। खेतीकी मौसम अभी समाप्त ही हुई थी। मूँगफलीके दाम भी चढ़े हुए थे, अतः किसानोंको अच्छी रकम हाथ लगती थी। इस प्रकार मूँगफली बेचकर उसके रुपये लिये समीपवर्ती सरधारपुर गाँवके एक किसान भाई कुछ कार्ड लेकर कपड़ा खरीदनेको जेतपुर आये थे। कपड़ेवालेकी दूकानपर कुछ भीड़ थी। इसलिये किसान भाईने जेबसे

कार्ड निकालकर दूकानदारको दिये और कहा कि 'मैं थोड़ी देरमें आता हूँ।'

दूकानदार भाईने उन कार्डोंको ज्यों-के-त्यों रख दिया। आये हुए कार्डोंका कपड़ा दे चुकनेके बाद दूकानदारने इन कार्डोंको हाथमें उठाया। कार्ड खोलकर देखनेपर अंदर सौ-सौ रुपयेके चौदह नोट मिले। क्षणभरके लिये दूकानदार नोटोंकी ओर देखते रहे। फिर उन कार्डोंको ज्यों-के-त्यों समेटकर गद्दीके नीचे रख दिया।

थोड़ी देर बाद वे किसान भाई आये। आवश्यक कपड़ा लिया। बिल बना। रुपये देनेके लिये उन भाईने जेबमें हाथ डाला और वे बिल्कुल सहम गये। उनके मुखपर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

दूकानदारने पूछा, 'क्यों, अचानक क्या हो गया?'

'कुछ नहीं, कुछ नहीं, मैं अभी आता हूँ' कहकर किसान भाई खड़े हो गये।

'पर क्या हो गया? बताइये तो सही। यों घड़ीभरमें ही कैसे घबरा गये?' दूकानदारने उनको पकड़कर बैठाते हुए कहा।

'मालूम होता है—जेबमेंसे कहीं गिर गये हैं। मैं होटलमें चाय पीने गया था। वहाँ देख आऊँ।'

'कितने थे? और यों कैसे गिर गये?'

'भाई! थे तो सौ-सौके पूरे चौदह नोट। मूँगफली बेचकर उसके दाम लेकर सीधा ही कपड़ा खरीदने चला आया था!'

'याद कीजिये, कहीं घरपर ही तो नहीं छोड़ आये!'

'नहीं-नहीं, कार्ड और नोट दोनों इस जेबमें साथ ही रक्खे थे। कहीं पड़ गये लगता है। नसीबमें होंगे तो मिल जायँगे। परंतु शहरोंके आदमियोंकी तरह हम लोगोंमें सावचेती नहीं होती, इसीसे ऐसा हो जाता है।' यों कहकर वे पता लगानेके लिये होटलमें जानेको खड़े हो गये।

परंतु उसी समय दूकानदारने कार्ड खोलकर नोट दिखाये, पूरे चौदह नोट। किसान भाईके मुखपर मुसकान छा गयी—'हैं, इन कार्डोंमें ही ये नोट रह गये? यह तो आप इतने भले आदमी हैं; नहीं तो, ये नोट थोड़े ही वापस मिलते। मेरा तो जी ही उड़ गया था। भगवान् आपका भला करें।'

'भाई! चौदह नोट देखकर अवश्य ही मन ललचा जाता है, परंतु अनीतिसे आया हुआ या लिया हुआ बिना हकका पैसा ठहरता तो है ही नहीं, घरमें पैसा होता है तो उसको भी टानकर ले जाता है। नीतिसे मिली हुई हककी रोटी खानेसे जो सुख और संतोष मिलता है, वह इस तरहकी अनीतिकी रोटीसे नहीं मिल सकता।'

वे किसान भाई बिलके रुपये चुकाकर भारी उपकारसे दबे बार-बार कृतज्ञता प्रकट करते हुए कपड़ा लेकर चले गये। खोयी हुई वस्तु मिलनेपर जैसा आनन्द होता है, उसी आनन्दकी रेखा उनके मुखपर उमड़ रही थी। दूकानदारने भी यह देखकर अपने हृदयमें बड़े आनन्दका अनुभव किया। (अखण्ड आनन्द)

—सवाईलाल वड़ोदरिया

हनुमान्‌जीकी कृपा

घटना गत अक्षय नवमीकी है। सीतामऊ (म० प्र०) में मगन तेलीका लड़का मोहनलाल, जिसकी आयु लगभग २४-२५ वर्षकी है, लंबे समयसे बीमार था। उसे पहले मोतीझरा ज्वर हुआ था। उसके पश्चात् दिनोंदिन उसकी स्थिति बिगड़ती चली गयी। सारे उपचार तथा प्रयत्न निरर्थक सिद्ध हुए। वह आठ-नौ महीनेसे पागलोंकी-सी चेष्टा करने लगा था और उसकी वाणी तो बिल्कुल ही बंद हो गयी थी। ऐसी स्थितिमें भी वह प्रतिदिन गाँवके बाहर शौचादि कार्यसे निवृत्त होनेके लिये दिन चढ़नेपर जाया करता था; किंतु गत अक्षय नवमीके दिन अकस्मात् प्रातः चार बजे उसकी नींद टूट गयी। वह लगभग पाँच बजे घरसे चल दिया। गाँवके बाहर श्रीहनुमान्‌जीके मन्दिरके प्राङ्गणके बाहर, जहाँ लोहेके तार खिंचे हैं, ज्यों ही वह अन्तिम छोरके एक खम्भेके पास पहुँचा कि उसे लगभग १२-१३ वर्षकी आयुका एक बालक सफेद वस्त्र पहने हुए सामनेकी ओरसे आता दिखायी दिया।

पास आते ही उस बालकने उसे ठहरनेका संकेत करके कहा कि 'तुम घबराना मत।' इसके पश्चात् पृथ्वीकी ओर झुकते हुए किसी वस्तुके उठानेका-सा अभिनय करते हुए 'इसे खा जाओ' यह कहकर उसने उस तेलीकी हथेलीपर मिट्टी-जैसी कोई वस्तु रख दी, जिसे वह खा गया। वस्तु उसे बड़ी स्वादिष्ट और अच्छी लगी।

इसके पश्चात् उस बालकने प्रथम आकाशकी ओर देखते हुए मोहनका मुख ऊंचा करवाकर उसके गलेपर हाथ फिराते हुए कहा—'बोलो राम ।' इतना सुनते ही आश्चर्यकी बात यह हुई कि जिस मोहनकी वाणी आठ-नौ माससे बंद थी, उसके मुखसे सहसा स्पष्ट शब्दोंमें 'राम' शब्द निकल गया । ऐसा उस बालकने तीन बार करवाया और तीनों ही बार उस तेली युवकके मुखसे 'राम' शब्दका उच्चारण हो गया ।

अब उसने मोहनसे कहा—'तुम ऊपर आकाशकी ओर देखो ।' ऊपर देखकर ज्यों ही उसने सामने नीचेकी ओर देखा तो उस बालकका पता नहीं । उसने तत्काल इधर-उधर आस-पास चारों ओर ढूँढ़ा; पर उसका कहीं कोई पता नहीं लगा ।

बस, उसी समयसे वह रुग्ण युवक, जो इतने दिनोंसे पागलकी-सी स्थितिमें था और जिसकी वाणी बंद थी, पूर्ण स्वस्थ और सयाना हो गया तथा साफ़-साफ़ बोलने लगा ।

जब इस घटनाकी सूचना सीतामऊके महाराजा साहब श्रीमन्त सर रामसिंहजी महोदयको मिली, तब उन्होंने भी इसकी जाँच करवायी और इसे सर्वथा सत्य जानकर बड़ा आश्चर्य और प्रसन्नता प्रकट की ।

जनताका अनुमान है कि यह उसकी हनुमान्‌जीकी भक्ति तथा राम-नाम-जपका फल है* । —शितिकण्ठ शास्त्री

---

* श्रीकेदारनाथजी शर्माने भी इसी घटनाको कुछ शब्दान्तरसे लिखकर भेजा है ।

भूखा भूख मिटाता है

बस आनेमें अभी दस मिनटकी देर थी। पू० विनोबाजीके भाषणसे प्रभावित हुए हम चार-पाँच मित्र प्रेम, मानवता, करुणा आदि शब्दोंपर चर्चा करनेमें इतने तल्लीन हो रहे थे कि आस-पास क्या हो रहा है, इसका भी कुछ पता नहीं था।

सहसा हृदयको मानो चीर डालेगी—ऐसी करुण आवाज सुनायी दी। हमने चौंककर पीछे देखा। धँसी हुई तेजहीन आँखें, झुर्रियाँ पड़े चेहरेपर बढ़ी दाढ़ी, हड्डियाँ गिनी जा सकें ऐसा दुबला शरीर, देहपर फटे-टूटे चिथड़े डाले लगभग साठ वर्षका एक बूढ़ा हमारी ओर दौड़ा आ रहा था। होहल्ला मचाती बालकोंकी टोली उसे हैरान कर रही थी।

'मैं पागल नहीं हूँ, चोर नहीं हूँ, भगवान्‌के नामपर मुझे मारो मत। मैं गरीब हूँ, दुखी हूँ, दो दिनोंका भूखा हूँ।' करुणाकी चर्चा करते हुए हम उसकी ओर देखते रह गये। 'हाय राम! भगवान्‌के नामपर इस भूखेको कुछ टुकड़े दो।'

आँसू-भरी इस आहपूर्ण वेदनाको सुननेको कोई तैयार न हुआ। अपने सुखीपनमें रचे-पचे सभ्य समाजके प्रतिष्ठित लोग उसे धमका रहे थे। 'गोल्ड फ्लैक' (सिगरेट) सुलगाते हुए एक भाई बोल उठे—'चला जा! पता नहीं, ऐसे कितने ढोंगी-फरेबी चले आते होंगे। हरामकी हड्डी हो गयी। आगे चल, दुर्गन्ध आ रही है।'

हम चार-पाँच मित्र इकट्ठे करके उस वृद्धको कुछ देनेकी तैयारी कर रहे थे। इतनेमें ही बगलके खोमचेवालेके हृदयमें राग जाग उठा। पावरोटीके दो बड़े-बड़े टुकड़े देते हुए उसने प्रेमसे कहा—'लो बाबा, यह खा लो।'

काँपते हाथों उस वृद्धने पावरोटी खाना शुरू किया। चार-पाँच ग्रास खाये होंगे कि 'ओ मा' पुकारता हुआ एक आठ-नौ वर्षका पंगु बालक नंगे बदन आँसू भरी आँखोंसे कुछ माँगने आ गया। उसे कुछ देनेकी बात तो दूर रही, किसीने उसकी ओर ताका ही नहीं। कुछ आशासे करुण चेहरा किये वह बच्चा उस वृद्धके पास खड़ा रहा। उसने उस बच्चेसे बड़ी मिठासके साथ कहा—'अरे भूखा है ! बोलता क्यों नहीं ! ले····खा····।' यों कहकर मन्द-मन्द हँसते हुए उस बूढ़ेने पावरोटीका एक टुकड़ा उस बच्चेको दे दिया। उसके चेहरेपर आत्मसंतोषकी रेखाएँ स्पष्टरूपसे अङ्कित हो गयीं।

मैं इस दृश्यको देखता ही रहा। कैसा मौन उपदेश था। कैसा प्रेरक संदेश था। हम अघाये हुए होनेपर भी भूखेको कुछ खिलानेमें असमर्थ थे। उधर वह बूढ़ा स्वयं भूखा रहकर दूसरेकी भूख मिटा रहा था। उसके विशाल हृदयके सामने हमारा हृदय नितान्त नगण्य था। भौतिक क्षेत्रमें आगे बढ़े हुए हम आध्यात्मिक क्षेत्रमें बहुत पीछे थे। पर वह बूढ़ा तो आध्यात्मिक क्षेत्रमें बहुत आगे बढ़ चुका था। —चन्द्रकान्त बी० त्रिवेदी

लड़ाई नहीं, न्याय

कुछ वर्षों पहलेकी राजस्थानकी घटना है। हरीराम और चाँदमल—दोनों सगे भाई थे। एक जमीनको लेकर आपसमें मतभेद हो गया। दोनोंने एक दिन आपसमें बात की—'भाई! मामला आपसमें तो निपटता नहीं। इससे हमलोग कचहरीमें दरख्वास्त दे दें। अपनी-अपनी बात हाकिमको सुना दें, फिर वह जो फैसला दें, उसीको मान लें।' दोनोंकी राय एक हो गयी। कोर्टमें दरख्वास्त दे दी गयी। दोनोंने परस्पर सलाह करके एक-एक वकील कर लिया और अपनी-अपनी बात वकीलोंको समझा दी। दोनों भाइयोंमें बड़ा मेल था। घरमें साथ ही खाकर परस्पर घरेलू चर्चा करते दोनों साथ ही कचहरीमें आते। दुपहरको खानेका सामान भी दोनों एक साथ लाते, साथ ही खाते। वकीलोंको भी अपनी-अपनी बात साथ ही समझाते। दोनों ही सच बोलते। उनके इस मामलेसे सभी चकित थे। द्वेष-लड़ाईकी तो कल्पना ही नहीं, केवल निपटारा कोर्टसे कराना चाहते थे। हाकिमने उनसे कहा—'आपलोगोंके बीचमें मैं क्या बोलूँ; जहाँ इतना प्रेम है।' उन्होंने कहा—'इसीलिये तो आपके पास निपटाने आये हैं।' हाकिम हैरान थे। आखिर हाकिमने उन दोमेंसे छोटे भाईको पंच बनाना चाहा। अपने ही मामलेमें आप ही पंच। उन्होंने कहा—'हाकिमका हुकुम हमें स्वीकार है।' पंचने पंचकी हैसियतसे दोनोंकी बातें सुनीं और अपने विरुद्ध बड़े भाईके पक्षमें फैसला दे दिया। अजब मामला था। —बिलासराय

अन्तरात्माकी आवाज

वर्षों पहलेकी बात है। सौराष्ट्रके एक छोटेसे गाँवमें हमारे पड़ोसमें एक ब्राह्मण सद्गृहस्थ रहते थे। वे पोरबंदर-गोशालाके लगान-वसूलीका काम करते थे। इसलिये उन्हें कई बार इधर-उधर बाहर जाना पड़ता था।

एक बार वे कलकत्ते जा रहे थे। रास्तेमें दिल्ली-स्टेशनपर उतरते समय उनकी जेब कट गयी। इस बातको लगभग दस वर्ष बीत चुके। उनको इस घटनाकी याद भी नहीं रही। इसी बीच एक दिन एक डाकिया तीस रुपयेका मनीआर्डर लेकर इनके घर पहुँचा। कहींसे मनीआर्डर आनेकी कल्पना ही नहीं थी। अतः इन्होंने समझा कि डाकियेकी भूल हुई होगी। पर जब इन्होंने फार्म लेकर उसकी कूपनपर लिखी बातें पढ़ीं, तब तो ये एकदम आश्चर्यमें डूब गये। उसमें लिखा था—

'बड़ी असहनीय परिस्थितियोंके कारण आपका पाकेट मेरे हाथ लगा था। उसे आज लगभग दस वर्ष हो चुके हैं। बहुत समयसे मेरी आत्माकी गहराईसे आवाज आ रही थी और मेरे दिलमें सदा शूल-सी चुभती रहती थी। आज उस पाकेटमें निकले हुए बीस रुपयोंके साथ दस रुपये और मिलाकर कुल तीस रुपये आपकी सेवामें भेजकर मैं आपके ऋणसे मुक्त होता हूँ (आपका पता मुझे पाकेटमें रक्खे एक कागजपर लिखा मिला था)।'

अन्तरात्मासे सदा ही आवाज तो आया करती है, फिर चाहे मनुष्य उसे सुने या न सुने। (अखण्ड आनन्द)

—जे० जे० राजाणी

आश्चर्यजनक सत्य घटना

विगत भाद्रपद कृष्ण जन्माष्टमीकी घटना है। मैं भाद्रपद कृष्ण पञ्चमीको अकस्मात् कुलंग वायुसे पीड़ित हुआ। बायाँ पैर पूर्णतः लुंज हो गया। उठना-बैठना भी दूभर था। चलना-फिरना तो कल्पनातीत था। योगराज गुग्गुलसे समुचित लाभ न देख कृष्ण-जन्माष्टमीको प्रातः एक सद्वैद्यको बुलाया गया। वैद्यराजजीने दो सप्ताहके पूर्ण विश्रामकी परमावश्यकता बतलायी, साथ ही ओषधमें सेक तथा रस-सेवन अनिवार्य बतलाया। वैद्यराजके चले जानेके बाद असह्य पीड़ासे छटपटाते हुए मैंने सम्यक्‌रूपेण निराश हो गतवर्षका 'कल्याण' निकालकर खोला। दैवात् जिस वाक्यपर दृष्टि गयी, वह इस प्रकार था—'आप रोगग्रस्त हैं, पीड़ित तथा दुखी हैं तो भगवान्‌की शरण ग्रहण कीजिये। आपकी पीड़ा दूर होगी, दुःखका शमन होगा। भगवान्‌से बढ़कर सद्वैद्य अन्य नहीं है। वे प्रणतार्तिहारी हैं, दीनबन्धु एवं करुणासिन्धु हैं। चूँकि वैद्यजीकी ओषधिका तैयार करना अत्यन्त असुविधाजनक था। अतः मैंने प्रण किया कि मैं अब किसी भी ओषधिका सेवन नहीं करूँगा।

तदनन्तर मैंने शुद्ध हृदयसे विश्वासके साथ भगवान्‌से प्रार्थना की—'भगवन्! मैं आपकी शरण हूँ, अब आपकी कृपाका ही भरोसा है। आज आपकी जयन्ती है। मैं जन्मोत्सवमें सहर्ष योग दे सकूँ (घरमें झाँकी बनी थी), खड़े होकर प्रार्थना करूँ तथा कल प्रातः नगर-स्थित मन्दिरमें आपकी बाँकी झाँकीके दर्शन करूँ—बस, यही मेरी कामना है।' दिनभर भगवत्स्मरण करता रहा तथा परिणामतः भगवत्कृपासे ऐसा ही हुआ। रात्रिको जन्मोत्सवके समय मैंने सहर्ष खड़े होकर

स्तुति की। दूसरे दिन मन्दिरोंमें भगवान्‌की बाँकी झाँकीके दर्शन किये तथा विद्यालय जाने लगा। भगवान्‌की इस महती अनुकम्पाका हृदयपर जो प्रभाव पड़ा, वह अकथनीय है। भुक्तभोगी श्रद्धालु भक्त ही इसका अनुभव कर सकते हैं। उस भगवत्कृपाके फलस्वरूप आज कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं, वह आपकी सेवामें प्रेषितकर आशान्वित हूँ कि आप इन्हें इस पत्रके सहित पाठकोंके कल्याणार्थ 'कल्याण' में प्रकाशित करनेकी कृपा करेंगे। 'कल्याण'से प्रेरणा मिली, अतः 'कल्याण'को ही ये भावप्रसून समर्पित हैं।

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।' इति शुभम्

—सिद्धगोपाल मिश्र 'सुधाकर', एम्० ए०

डाक्टरकी मानवोचित सहृदयता

कुछ ही समय पहले मैं अपने मामाजीके पास किसी खास कामसे पूना गया था। मेरे मामाजी स्वयं एक डाक्टर हैं। उन्हींके अस्पतालमें एक प्रसिद्ध डाक्टर और भी हैं। वे गढ़वाली पण्डित हैं और जाति है डिमरी। ये वस्तुतः बड़े सरल हृदयके सज्जन हैं। डिमरी साहबने छोटी-सी उम्रमें बहुत ज्यादा पढ़ लिया था। एक दिनकी बात है कि वे अस्पतालसे करीब चार बजे बाहर आ रहे थे। फाटकपरसे जैसे ही कार निकली कि सड़कके किनारे दो प्राणी—एक दस-पंद्रह मिनटका बच्चा और एक युवती अचेत लेटी थी। उस स्थानपर खंडहरकी दीवाल होनेसे कुछ दिखायी नहीं देता था। वे फौरन कार रुकवाकर उतर गये और उस स्थानपर गये। युवतीकी शरीर-परीक्षा की, तदनन्तर उसको और बच्चेको भी

उठाकर गाड़ीमें रखकर वापस अस्पताल पहुँचे। कुछ चिकित्सा मिलनेपर लड़कीको होश आया। वह उठकर भागने लगी, तब दरवाजेपर डाक्टर डिमरी खड़े थे। उन्होंने बड़े स्नेहसे उसका नाम वगैरह पूछा। पता चला, वह लड़की घरसे भागी हुई थी। लड़कीसे जब पूछा गया कि तुम्हारी शादी हो गयी है तो नकारात्मक उत्तर मिला। डिमरी साहब एक क्षणके लिये काँप-से गये। उन्होंने फिर पूछा कि 'वह लड़का कौन है?' बतानेपर उसकी पूरी तरह खोज की गयी और तबतक उन अनाथोंको अपनी कोठीपर ही रक्खा, जबतक कि लड़का नहीं मिल गया। जब लड़का मिला तो वह साफ इन्कार तो कर ही गया, उलटा लड़नेको तैयार हो गया। डाक्टर साहब मुस्कराकर इज्जतके साथ उससे पूछ रहे थे कि वह गाली दे बैठा। इसपर मुझे क्रोध आ गया। डाक्टर साहबने एकदमसे उछलकर उस नीचको बचा लिया। इसके पश्चात् डिमरी साहबने उसे कारसे वापस भिजवा दिया। लड़की अंदर कमरेमें लेटी रो रही थी। डिमरी साहब बड़ी मुश्किलसे मना रहे थे। आखिर डाक्टर साहबने उसे राम-नामका जप करनेको कहा और खुद भी किया। अचानक शामको एक लड़केके साथ उसके पिताजी आये और काफी देरतक धीरे-धीरे बातें करते रहे। तदनन्तर एक दिन लड़का, उसके पिता, एक पण्डित और दो-चार ख्यातिप्राप्त सज्जन आये और लड़कीसे आर्यसमाजी ढंगसे विवाह करा दिया। डाक्टर डिमरी साहबने अपनी तरफसे पाँच सौ रुपये नगद और थोड़े-से कपड़े दिये और कहा—'मैं बहिनको दान कर रहा हूँ। इसको किसी प्रकार भी तंग मत करना।' विदाईके समय खुद भी रो पड़े। उनको रोते

देख हम सब भी रो पड़े । स्मरण रहे, डाक्टर डिमरी साहब ऊँचे खानदानके और यहाँ एक बड़े उच्चपदपर नियुक्त हैं और अच्छा वेतन पाते हैं और बड़े ही सहृदय हैं । इस प्रकार इन्होंने कई नेक सेवाएँ की हैं । कुछ दिनों पश्चात् एक दिन जब डिमरी साहब अपने दफ्तरके कमरेमें थे, तब वे दोनों आये और डिमरी साहबके पैर छूकर माथेपर धूल लगाने लगे । लड़का तो पैरोंमें लेट जा रहा था और रो रहा था । डिमरी साहबने उठाकर उसे छातीसे लगा लिया और दोनोंको हृदयसे आशीर्वाद दिया ।

—तोताराम वर्मा- बी० ए०

अरबकी इन्सानियत

'जमादार साहेब ! चलिये रोटी खा लीजिये !'

'नहीं, मैंने अभी खाया है ।'

'चलिये, चलिये ! एक-दो कौर ही ले लीजिये । मेरे गलेकी कसम !'

'नहीं-नहीं, मैं खा चुका हूँ ।'

कुछ वर्षों पहलेकी घटना है । तीन गाँवोंके बीचमें स्वच्छ जलकी एक छोटी-सी बावली थी, उसके किनारे माँकी गोद-जैसी छाया फैलाये एक पुराना बरगदका पेड़ खड़ा था । एक दिन गर्मियोंकी दुपहरीमें उस हरियाले देववृक्षकी छायामें बावलीके किनारे दो मनुष्य बैठे थे । एक था अरब और दूसरा सयाना सेठ । सेठ उस अरबको बाटी खिलानेके लिये कसम दिला रहा था । इसमें कारण था । प्रथम तो वह सबसे डरकर चलनेवाला ग्रामीण व्यापारी था,

इससे वह चाहता था कि खिला-पिलाकर और सुपारीका महीन चूरा देकर इसे दोस्त बना लिया जाय। दूसरे, आज यह सेठ अपनी पुत्रवधूके लिये गहना चढ़ानेको लाठी गाँवमें गया था, पर वहाँ लड़कीके पितासे कुछ बोल-चाल हो जानेके कारण गहनेका डिब्बा वापस लेकर आया था। इसलिये रास्तेमें एक हथियारबंद साथीकी उसे जरूरत थी। इसीलिये वह कसम दिला-दिलाकर मनुहार कर रहा था। आखिर, उस अरब सूबेदारको दो बाटियाँ खानी ही पड़ीं।

दिन ढलने लगा, तब अरबने एक कंधेपर थैला लटकाया और दूसरे कंधेपर लंबी नलीवाली बंदूक लटकायी। कमरकी कटारको ठीक करके उसे कमरकसके साथ बाँध लिया और उठकर चलनेकी तैयारी की। सेठने भी घोड़ीपर जीन डालकर कस लिया। अरब सूबेदारने पूछा—'सेठ! कहाँतक जाना है?'

'जी! खोपालातक।'

'मेरा भी वही रास्ता है, चलो।'

सूबेदार अमरेलीकी नौकरी छूट जानेके कारण रोटियोंकी खोजमें बड़ौदा जा रहा था। दोनों चलने लगे, तब अरबने पूछा—'सेठ! तुम्हारे पास कोई जोखिम तो नहीं है न?'

'नहीं बापजी! हमलोग जोखिम रखते? बिल्कुल खाली हूँ।' सेठने कहा।

अरबने फिर कहा—'सेठ! छिपाना नहीं, हो तो मेरे हाथमें सौंप देना, नहीं तो जान खो बैठोगे!'

'आपके गलेमें हाथ सूबेदार! कुछ भी नहीं है।'

सेठके झोलेमें एक डिब्बा था और डिब्बेमें गहना था। दोनों

आगे बढ़े। ऑंकड़िया और देरडी गाँवोंके बीचमें एक लंबा मैदान पड़ता था। वहाँ 'गीगा शियाल' नामक एक कोली अपने अठारह जवानोंको साथ लिये रास्ता रोके खड़ा था।

इन यमदूतोंको दूरसे ही देखकर सेठका तो राम ही रम गया। उसकी आवाज फूट निकली। उसके मुँहसे निकल गया 'मार डाला सूबेदार! अब क्या होगा?'

'अपने पास क्या है, जो वे लूटेंगे।' अरबने कहा।

'सूबेदार! मेरे पास पाँच हजारका गहना है!'

'अरे सेठ! झूठ क्यों बोले थे? लाओ, अब तुरंत निकालकर मुझको दे दो, नहीं तो ये कोली तुम्हारी जान ले लेंगे।'

सेठने डिब्बा निकालकर अरबके हाथपर रख दिया। यह सारी चीज सामने आनेवाले कोलियोंने आँखोंसे देख लीं और गीगाने जोरसे पुकारकर कहा—'अरे सूबेदार! रहने दे, नहीं तो तू और यह बनिया—दोनों ही जानसे हाथ धो बैठोगे।' सेठ सूबेदारने सेठसे कहा। 'घोड़ी दौड़ाकर भाग जाओ, अपनी जान बचाओ। मुझ एकको ही मरने दो।'

सेठने घोड़ी दौड़ायी, कोलियोंने उसे नहीं रोका। वे जान गये थे कि गहनेका डिब्बा तो अरबके पास है। उन्होंने अरबको घेरकर कहा—'अरे सूबेदार! क्यों डिब्बा लेकर तुमने अपने ही हाथों अपनी मौतको बुलाया?'

सूबेदारने कहा—'मैंने उसका अनाज खाया था।'

'अरे—सारा अनाज निकल जायगा अभी! डिब्बा दे दे जल्दी।'

'नहीं, मैंने उसका अनाज खाया है।'

'अरे मूर्ख सूबेदार ! घरमें बच्चे बाट देख रहे होंगे ।'

'नहीं, मैंने उसका अनाज खाया है ।' बस, सूबेदारकी जबानपर यही एक वाक्य था । कोलियोंने सूबेदारका पीछा किया, परंतु उसके समीप जानेका किसीका साहस नहीं हुआ; क्योंकि उसके पास बारूदभरी बंदूक थी । कोली यह जानते थे कि 'अरबके बंदूककी गोली कभी खाली नहीं जाती ।'

थैलेमें गहनेका डिब्बा और हाथमें बंदूक । अरब तेजीसे रास्ता काटे जा रहा है । इधर-उधर कोली चल रहे हैं । कुछ समीप आकर कोलियोंने धनुष खींचकर तीर चलाना शुरू किया । सूबेदार बदनमें घुसे तीरोंको खींचता और तोड़ता हुआ तथा बंदूकसे कोलियोंको डराता हुआ आगे बढ़ा जा रहा है ।

पर वह बंदूक चलाता क्यों नहीं ? इसीलिये कि बंदूकमें भरी गोलीके सिवा उसके पास और गोली-बारूद नहीं थी, जिसे फिरसे भरकर वह चला सके । इसीलिये वह डराकर अपना बचाव कर रहा था ।

अब तो आँकड़िया गाँव नजदीक आ गया । कोलियोंने समझा, अरब देखते-ही-देखते गाँवमें घुस जायगा । तब गीगा शियालके जवान भानजेने चिल्लाकर कहा—'अरे शर्म है ! बारह-बारह आदमियोंके बीचसे एक अरब गहनेका डिब्बा लेकर निकल जायगा । क्या मुँह दिखाओगे औरतोंके सामने जाकर ।'

इतना सुनते ही कोली अरबपर टूट पड़े । अरबने गोली चलायी और वह गीगाके भानजेकी खोपड़ी फोड़कर खूनसे नहाती-धोती सनसनाहट करती आगे निकल गयी । अरबकी अचूक गोली थी ।

पर अब अरबके पास और गोली थी नहीं। कोली उसपर टूट पड़े। अरबने हाथमें ले ली तीखी धारवाली कटार और उसीसे उसने कई कोलियोंको सुला दिया। अब तो गाँव आ गया। गीगा अपने बचे हुए साथियोंको लेकर लौट गया।

खूनसे लथपथ अरब धीरे-धीरे पैर बढ़ाने लगा। उसकी आँखोंपर खून चिपटा था। शरीरसे खून चू रहा था। उसे रास्ता दिखायी नहीं दे रहा था। वह सीतापुरी नदीके किनारे उतरकर एक शिलापर बैठ गया और अपना लहू-लुहान मुँह धोने लगा। नदीके उस किनारे आँकड़िया गाँव था। आई जान बाईकी जगहपर गाँवके गरासदार चारण बीकोभाई बैठे थे, उनकी नजर गयी—कोई लहू-लुहान जख्मी आदमी पानी पीने बैठा है। बीकोभाई उसके पास आये। अरबकी आँखें बंद थीं। उसने अनजान आदमीके पैरकी आहट सुनकर अपना थैला दबाया और पुकारा—'चोर-चोर!'

बीकोभाईने अरबको समझाया। उन्होंने उसका शरीर धोया, फिर घर जाकर एक अच्छे जर्राह (अस्त्र-चिकित्सक) की व्यवस्था करके मरहमपट्टी करवायी। दूसरे दिन ही गीगा शियाल अपने तीस आदमियोंको साथ लेकर आ पहुँचा और बीकोभाईसे कहने लगा—'मेरे चोरको मुझे तुरंत सौंप दो, नहीं तो, मैं गाँवके चारों ओर सूखे काँटे बिछाकर आग लगा दूँगा।' बीकोभाईने कहा—'गीगा! चारणकी शरणमें आये हुएको यों नहीं सौंपा जाता। मैं चारण हूँ।'

गीगा बोला—'मेरे गाँवके किनारे मेरे भानजेकी लाश जल रही है। उस जवानको मारनेवालेको मैं उसीके साथ उसी चितामें

जला दूँगा, तब मुझे संतोष होगा। अतः मुझको उसे अभी दे दो, नहीं तो, तुम्हारी आबरू नहीं रहेगी।'

बीकोभाईके साठ रबारी साथी लाठी लेकर खड़े हो गये और गीगाको फटकारकर बोले—'अरे गीगला! भाग जा यहाँसे, हमारे जीवित रहते शरण आये हुएको तू नहीं ले जा सकता।' सारा गाँव गरज उठा, गीगा लजाकर वापस लौट गया। कुछ दिनोंमें अरब अच्छा हो गया, परंतु सोते-जागते वह कभी अपना थैला नहीं छोड़ता। आराम होनेपर उसने बीकोभाईसे जानेके लिये अनुमति माँगी।

बीकोभाईने पूछा—'सूबेदार! राह-खर्चके लिये कुछ है या नहीं।' सूबेदारने केवल इतना ही कहा—'नहीं।'

बीकोभाईने खर्च दे दिया। अरबने प्रार्थना की कि 'बीकोभाई! खोपालातक मुझे पहुँचा आइये।' बीकोभाईने सोचा कि अरब गीगा शियालसे डरकर साथ चलनेके लिये कह रहा है। दोनों खोपाला जा पहुँचे। अरबके मनमें बड़ी परेशानी थी—'कैसे सेठ जल्दी मिले और उसका डिब्बा उसे सौंप दूँ।' सेठका नाम अरबको याद नहीं आ रहा था। सेठको उसकी चीज दिये बिना उसे जरा भी चैन नहीं था।

इतनेमें खोपालाके बाजारमें अरबको वह सेठ दिखायी दिया। अरबने उसके पास जाकर थैलेसे डिब्बा निकालकर उसके हाथपर रख दिया और कहा—'सेठ! अपना गहना जल्दीसे गिनकर सँभाल लो।'

बीकोभाईके आश्चर्यका पार नहीं रहा। उन्होंने पूछा—'अरे सूबेदार! तुम्हारे पास इतना धन था, फिर तुमने कैसे यों कहा कि 'मेरे पास कुछ भी नहीं है!'

अरबने कहा—'यह धन तो दूसरेका था !' बीकोभाईने कहा—'धन्य है तेरी जननीको सूबेदार !' बीकोभाईको अब पता लगा कि 'अरबने अपने लिये नहीं, पर दूसरेके लिये बेमतलब इतना झंझट मोल लिया !' बीकोभाईने सेठको सब बातें कहकर समझायी! सेठको जरा भी आशा नहीं थी गहने मिलनेकी। इससे सेठको बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ। सेठने अरबको इनाम देनेके लिये पाँच रुपये निकालकर दिये। अरबने सिरसे लगाकर रुपये वापस सेठके हाथपर रख दिये।

सेठकी पीठपर जूती मारकर बीकोभाईने कहा—'ब्याजखोर बनिये ! तेरे पाँच हजारके गहनोंके लिये मरनेको प्रस्तुत इस अरबको पाँच रुपल्ली देते तुझे शर्म नहीं आयी !'

अरब बड़ोदा जा पहुँचा। उसके हृदयमें बीकोभाईका नाम गूँज रहा था। एन ठक्कर

जीवन-दान

सावनका महीना। अमावास्याकी घोर अन्धकारपूर्ण रात्रि और बूँदा-बाँदी ! हाथको हाथ दिखायी नहीं दे रहा था। बादल अपनी सम्पूर्ण शक्तिके साथ दिल दहलानेवाली गर्जना कर रहे थे। कभी-कभी आकाशमें चमकनेवाली दामिनी ही अन्धकारमें दीपकका कार्य कर रही थी।

ऐसी ही भयानक रात्रिमें समाजसे पीड़ित और ठुकरायी हुई एक षोडशी युवती अपने नवजात शिशुको अपने अङ्कमें लिये गाँवसे बाहर बह रही नदीकी ओर बढ़ रही थी। युवतीकी उम्र यही कोई

बीस वर्ष होगी। गौर वर्ण, छरहरा बदन, लंबा कद और पीठपर फैले हुए घुँघराले बालोंवाली इस युवतीका विवाह हुए अभी तीन ही वर्ष हुए थे कि उसके शराबी और व्यभिचारी पतिने मामूली बोलचालके बदले उसे मार-पीटकर घरसे निकाल दिया। यही कारण था कि आज वह दुःखके आवेशमें अपना तथा अपने शिशुका जीवन-दीप बुझाने नदीकी ओर बढ़ रही थी!

काले नागकी तरह फुफकारती हुई निस्तब्ध भयानक रात्रि और तिसपर ऊबड़-खाबड़ मार्ग। किसी तरह गिरती-पड़ती वह युवती नदीके किनारे पहुँची। उसने शिशुको अङ्कमें भर जीभर चूमा और फिर अपनी आधी साड़ी चीरकर उसमें उसे लपेट दिया और उसे लेकर पानीकी धारकी ओर बढ़ी। कमरतक पानीमें पहुँचनेके बाद युवतीने फिर एक बार शिशुके मस्तकको चूमा और वह उसे पानीमें बहाने जा ही रही थी कि उसे नदी-किनारे कुछ आहट मालूम हुई और आवाज सुनायी दी—'कौन?'

युवती कुछ सहमी और उसने चाहा कि दोनों साथ ही डूब मरें कि पीछेसे उसे किसी हाथका स्पर्श हुआ। उसने घूमकर देखा तो एक युवक उसके पास खड़ा था। युवतीने कहा—'मुझे मरने दो। मेरे लिये यही ठीक है।' युवकने कहा—'बहिन! यह जीवन हँस-हँसकर कठिनाइयोंको पार करनेके लिये मिला है। इस प्रकार रोकर आत्मघात करनेके लिये नहीं—।' युवतीको इन शब्दोंमें सच्चे स्नेहका आभास मिला और उसकी आँखें बरस पड़ीं। युवकने उसे बाहर निकाला, ढाढ़स बँधाया और कहा—'आजसे तुम मेरी बहिन हो और मेरे घर ही रहोगी। आओ मेरे साथ।'

युवकने शिशुको अपनी गोदमें लिया और युवतीको लेकर अपने घरकी ओर बढ़ा…………।

--सरदारमल जैन, 'प्रभाकर'

ईमानदार गरीब

अभी कुछ दिनों पहलेकी बात है कि हमारे पड़ोसमें एक पण्डितजी रहते थे। वहाँ एक गरीब आदमी भी उनके यहाँ आया करता था। एक समय पण्डितजीकी लड़की सौ रुपयेका एक नोट कहीं रखकर भूल गयी। जब पण्डितजीने नोट माँगा, तब उसे याद आयी। लड़कीने सारा घर छान मारा; किंतु नोटका पता नहीं चला। तरह-तरहकी शङ्काएँ की जाने लगीं। पण्डितजीने बाड़ेके दो बच्चोंपर संदेह किया। खैर, वे हजारों रुपये कमाते थे। उस सौके नोटको भूल गये। छः महीने बाद उस गरीबके लड़केकी शादी थी। वह पण्डितजीसे सहायता माँगने आया। पण्डितजीने उसे पहले पहननेको एक धोतीका जोड़ा दिया। घर ले जाकर उसने धोतीका जोड़ा खोला तो उसमेंसे एक पर्श गिरा। गरीबने देखा तो उस पर्शमें सौ रुपयेका एक नोट है। वह तुरंत पण्डितजीके पास पहुँचा। बोला—'पण्डितजी! आपने जो मुझे धोतीका जोड़ा दिया था, उसमेंसे यह सौ रुपयेका नोट और पर्स निकला है। यह लीजिये। पण्डितजीने पर्स देखकर कहा कि यह तो हमारा ही है। लड़की रखकर भूल गयी थी। इससे धोती जोड़ेमें ही पड़ा रह गया।' पण्डितजी आश्चर्यमें पड़कर सोचने लगे कि 'अमीर तो एक-एक पैसेके लिये बेईमानी करते हैं; किंतु इस गरीबने सौ रुपयेको एक पैसा भी

नहीं समझा ।' पण्डितजीके आँसू आ गये । उन्होंने कहा कि तुम्हारे पुत्रके विवाहमें सारा खर्च मैं करूँगा । तुम किसी भी बातकी चिन्ता न करना । मैं सदा तुम्हारा साथ दूँगा ।' फिर उस गरीबके पुत्रके विवाहमें पण्डितजीने हजारों रुपये खर्च किये और गरीबकी ईमानदारीकी इज्जत रक्खी ।

—मनूलाल आचारी

पीपल

भयंकर-से-भयंकर विषधर सर्पका अचूक इलाज

सन् १९४१ की बात है । पूज्य बापूके आदेशानुसार स्वतन्त्रताके संग्राममें वे लखनऊ डिस्टिक्ट जेलमें था । एक दिन हमारी बैरिकमें रहनेवाले हरदोई जिलाके वयोवृद्ध सत्याग्रहीने (दुर्भाग्यसे मैं उनका नाम भूल गया हूँ, उन्हें अक्सर वैद्यजी कहा करते थे) बैरिकमें रहनेवाले करीब ८०-९० सत्याग्रही सज्जनोंको एक जगह बैठाकर कहा, 'आओ, आज अपने साथियोंको अपने अनुभवपूर्ण पीपल वृक्षकी चमत्कारकी बात बतायें । उन्होंने बताया कि संसारमें आजतक काले नागके काटेको अच्छा करनेकी कोई भी ओषधि इतनी अच्छी नहीं ईजाद हुई जितना अच्छा पीपल है । उन्होंने यह भी कहा कि यह बात मैं सुनी हुई नहीं कहता, बल्कि लगभग सौ आदमियोंको मैं स्वयं अच्छा कर चुका हूँ, तब बताता हूँ । उन्होंने बताया कि जब किसीको सर्प काट ले, तब फौरन काफी तन्दुरुस्त बलवान् पाँच आदमियोंको वहाँ ले जाओ । काटे हुए व्यक्तिको बैठा दो । एक-एक आदमी एक-एक पैर दबा लें, एक-एक आदमी दोनों हाथ पकड़ लें ताकि वह व्यक्ति, जिसे सर्पने काटा है, बिल्कुल हिल-डुल न

सके। पाँचवाँ आदमी, उसी व्यक्तिके पीछे बैठकर मजबूतीसे उसका सिर पकड़ ले ताकि सिर भी हिले नहीं, अब आप फौरन ही पीपल-की एक ऐसी डाल तोड़कर मँगावें, जिसमें बीस-पचीस हरे चमकदार पत्ते लगे हों। उनमेंसे ऐसे दो पत्ते मय डंठलके (नकुनोंसहित) तोड़िये जो कि टूटा हुआ हिस्सा जहाँसे दूध निकलता है, वह पत्तेका डंठल कानोंमें जा सके। आप पहले एक कानमें देखकर काफी सावधानीसे, जैसे कनखुदा मैल निकालता है, उसी तरह धीरेसे डंठल कानमें डालें। यदि सर्पने काटा है तो ज्यों ही लगभग एक इंच डंठल कानके अंदर जायगा कि वह व्यक्ति, जिसे सर्पने काटा है, इतनी तेजीसे चीखने-चिल्लाने लगेगा, जैसे कोई उसे मारे डाल रहा हो। वह उठकर भागने, पत्ता पकड़ने या मूँड हिलाकर पत्ता बाहर निकालनेके सैकड़ों प्रयत्न करेगा। इसी बीच दूसरे कानमें भी उतना ही पत्ता डालकर अब शान्त होकर बैठ जाइये। मरीजको रोने-चीखने-चिल्लाने दीजिये। अधिक-से-अधिक पाँच मिनटमें वह चिल्लाना बंद कर देगा और वह चिल्लाना तभी बंद करेगा जब पत्ते विष सब खींच लेंगे। यदि चिल्लाना न बंद करे तो पत्ते बदल दीजिये और पाँच मिनटतक फिर दूसरे पत्ते लगा दीजिये। चाहे जैसे जहरीले सर्पका विष हो ठीक दस मिनटमें वह ठीक हो जायगा। श्रीमान्‌जी! हरदोईके वैद्यजीके इस प्रयोगको मैंने आकर किया और सन् ४१ से लेकर १७-१८ वर्षोंमें अबतक करीब ७० आदमियोंको मैं अच्छा कर चुका हूँ। अचूक प्रयोग है। यदि सर्पने नहीं काटा है तो कानमें पता डालनेपर वह चुपचाप बैठा रहेगा, यही परीक्षा है कि सर्पका विष नहीं है। सर्पके विषके

अतिरिक्त अन्य विषोंमें यह पत्ता काम नहीं करेगा। पत्ता डालनेवालेको खूब सावधान रहना चाहिये। रोगीकी चिल्लाहटसे घबराकर पत्ता हाथसे छोड़ नहीं देना चाहिये। अन्यथा, पत्ता अपने-आप कानमें खिंचकर चला जायगा और पर्दा फाड़ देगा। जहाँसे रोगी चिल्लाने लगे बस, वहींसे पत्ता न आगे जाने दें, न पीछे आने दें। दूसरे, कानसे निकाले पत्तोंको या तो जला दें या तो जमीनमें खोदकर गाड़ दें, क्योंकि यदि कोई जानकर उन पत्तोंको खा लेगा तो वह मर जायगा। जिन सज्जनोंको कोई भ्रम हो या जो विशेष जानकारी करना चाहें तो मुझे पत्र डालकर पूछकर भ्रम निवारण कर सकते हैं, किंतु पूछनेवालेको चाहिये कि वे जवाबी कार्ड भेजें और लिफाफामें उत्तर चाहें तो टिकट भेजें।

—मेवालाल तार्किक—मु० पो० भूसानगर, जिला कानपुर

श्रीहनूमान्‌जीकी कृपा

किसी जिलेके एक उच्चाधिकारी महोदय तीर्थयात्राके उद्देश्यसे श्रीचित्रकूट स्टेशनपर पधारे। ताँगा या किसी सवारीके अभावमें उन्होंने सोचा कि पहले सवारियोंके साधन न होनेपर लोग पैदल ही तीर्थयात्रा करते थे, तब हम भी पैदल क्यों न चलें? यों सोचकर वे दो मजदूरोंको लेकर चित्रकूटको चल दिये। दो बच्चोंको दो मजदूरोंने लिया और अधिकारी महोदयकी धर्मपत्नीने एक बच्चेको गोदमें लेकर प्रस्थान किया। वहाँसे चलकर वे पयस्विनीजीके तटपर पहुँच गये। पहुँचनेपर अधिकारी महोदयने कहा कि 'पहले मैं स्नान कर लूँ, फिर और लोगोंको स्नान करा दूँगा।' वे चले गये। श्रीमतीजीने सोचा

*

कि मैं भी नहा लूँ और छोटे बच्चेको लेकर वे भी स्नानके लिये चलीं। बच्चेको किनारेपर बैठाकर वे गङ्गाजीमें स्नान करने लगीं। वे स्नान-भजनमें तन्मय हो गयीं। बच्चेका ध्यान नहीं रहा। इसी समय वह किनारेपर बैठा हुआ बच्चा नदीमें खिसक गया। लड़केका ध्यान आते ही देखा तो बच्चा जहाँ बैठा था, वहाँ नहीं दिखायी दिया। तब तो वे बड़े जोरसे रोने-चिल्लाने लगीं। मजदूर भी दौड़े। अधिकारी महोदयने सुना तो वे भी दौड़े। बच्चेको ढूँढ़ा, पर कहीं नहीं पाया।

इधर माता जब बच्चेके लिये बेचैन होकर रो रही थी, तभी उसका ध्यान श्रीभगवान्‌की कृपा-सुधाकी ओर गया। उन्होंने रोते-रोते ही कहा—'भगवन्! चित्रकूट आनेपर दुःख दूर होते हैं, मुझे यह महान् दुःख क्यों दिया गया?' उनका विलाप बढ़ता ही गया। वे जोरसे रोकर हाथ उठाकर कहने लगीं—'हे बूढ़े हनुमान्‌जी! तुम्हें रामजीकी दुहाई है, हमारे लड़केको ढूँढ़कर तुरंत ला दो।' इस करुण प्रार्थनाको सुनकर एक मोटा ताजा बंदर पासके पीपलके वृक्षसे गङ्गाजीमें कूद पड़ा और कुछ ही देरमें बच्चेका हाथ पकड़कर लाकर किनारेपर बैठा दिया। उस बंदरको केवल उन श्रीमान् अधिकारी महोदय, श्रीमतीजी तथा पासके सज्जनोंने देखा। किंतु उसी समय वह बंदर अदृश्य हो गया।

उन दोनोंके हर्षका पार नहीं रहा। उन्होंने बच्चेके मिलनेकी खुशीमें चित्रकूटकी महिमाका विशद वर्णन किया। बच्चोंको और बंदरोंको मिठाई बाँटी गयी। तत्पश्चात् वे चित्रकूटजीकी परिक्रमा करके अपने पूर्वनिश्चित स्थानपर चले गये।

मैं स्वयं उस समय गङ्गाजीमें स्नान कर रहा था, किंतु मैं अधिक दूर था। इसलिये मैंने उस बंदरको नहीं देख पाया।

——रामेश्वरप्रसाद गुप्त

ईश्वरमें आस्था

यह घटना आजके बारह वर्ष पूर्वकी है। १५ अगस्त सन् १९४७ के दिन भारतको स्वतन्त्रता तो मिली; किंतु उस स्वतन्त्रताका जो मूल्य पाकिस्तानमें तमाम हिंदुओंको और भारतके कुछ प्रान्तोंमें मुसल्मानोंको बुरी तरह चुकाना पड़ा, उसे याद करके आज भी हमारे हृदय दहल उठते हैं। मेरे एक मित्र, जो बी० एस्-सी० में मेरे साथ पढ़ते थे, एक पंजाबी शरणार्थी हैं। उन्होंने जो घटना मुझे उन दिनोंकी सुनायी, वह ईश्वरमें आस्था उत्पन्न करनेके लिये बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

घटना इस प्रकार है——वे अपने परिवारसहित आजादीके पहले पश्चिमी पंजाबके रावलपिंडी जिलेके एक कस्बेमें रहते थे। उनके पिता उस कस्बेके स्टेशनमास्टर थे। आजादीके पहले ही गाँवोंमें दंगे शुरू हो गये। मेरे मित्रकी माताने अपने पतिसे कहा कि 'अब हमें भारत चल देना चाहिये। यहाँ रहनेमें बहुत खतरा है!' किंतु मास्टरसाहब सात्त्विक प्रकृतिके थे, वे अपने सात्त्विक स्वभावके कारण दंगोंके भयानक परिणामोंके बारेमें विचार नहीं कर सके और बोले——'अभी क्या चिन्ता है! सरकार उन गुंडोंको पकड़कर जेलमें डाल देगी जो उपद्रव करेंगे।' किंतु पत्नीको विश्वास

नहीं हुआ, वह अपने परिवारसहित रावलपिंडी आकर अन्य सम्बन्धियोंके साथ भारतमें जालन्धर शहरमें अपने निकट रिश्तेदारके घर आ गयी। मास्टरसाहबसे बहुत आग्रह किया, किंतु वे अपनी ड्यूटीपर कर्तव्यपरायणता दिखाना चाहते थे। अतः वे नहीं आये। इधर जालन्धरमें उनकी पत्नी अपने पतिके बारेमें बहुत चिन्तित रहने लगी और उनकी कुशलताके लिये ईश्वरसे नित्य प्रार्थना करने लगी। आजादी मिलनेपर तो दंगोंने और भी भयानक रूप धारण कर लिया। दोनों ही भागोंमें भीषण नरसंहार शुरू हो गया। मेरे मित्रकी माताको अब और चिन्ता होने लगी। एक दिन ज्यों ही वह पूजा समाप्तकर बाहर आयी, त्यों ही उसके पति एक मित्रके साथ आ गये। चारों ओर घरमें खुशी छा गयी। जब उनसे पूछा कि आप कैसे बचे, तब उन्होंने कहा—'तुमलोगोंके जानेके बाद दंगे बढ़ने लगे। सरकार कुछ नहीं कर रही थी। मुस्लिम गुंडे घोर उपद्रव मचा रहे थे। हिंदू सर्वथा निःसहाय थे। उनके घर-बार, इज्जत, धन, जन आदि सब बुरी तरह लूटे जा रहे थे। एक दिन जब मैं आफिसमें बैठा काम कर रहा था, तब बाहर बड़ा शोर सुनायी पड़ा और यह कहते सुना कि स्टेशनमास्टर हिंदू है, उसे मार डालो।' यह बात सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। बचावका कोई उपाय नहीं सूझा और मैं ईश्वर-स्मरण करने लगा और मनमें रामनामका स्मरण करने लगा। जब शोर बढ़ने लगा तब मैं आफिसके अंदर एक बड़ी टेबलके नीचे घुस गया और आड़े एक कुरसी लगा दी। थोड़ी ही देरमें गुंडे अंदर आये और मुझे इधर-उधर ढूंढ़ने लगे, किंतु ईश्वरकी अद्भुत कृपा थी कि उनकी दृष्टि मुझपर नहीं पड़ी।

वे निराश होकर अन्यत्र दंगा करने चले गये। बादमें भी ईश्वरकी ही कृपा थी कि 'थोड़ी ही देरमें एक ट्रेन जो कुछ हिंदू सेनाके नेतृत्वमें हिंदुओंको लेकर भारत जा रही थी, उस स्टेशनसे गुजरी, मैं जल्दीसे उसमें सवार हो गया। फिर ईश्वरकी कृपासे सकुशल यहाँ पहुँच गया।' इस सच्ची घटनाको पढ़कर किसे विश्वास नहीं होगा कि ईश्वरको आर्तस्वरसे पुकारनेपर अथवा इसके समयानुकूल स्मरण करनेपर वह रक्षा नहीं करता। ईश्वरमें आस्था उत्पन्न करनेके लिये यह घटना बड़ी अच्छी है।

—श्याममनोहर व्यास, बी० एस्–सी०

भलेका भला और बुरेका बुरा फल

ईश्वरदास, रतनलाल और रामनारायण—तीनों भाई थे। पिताकी जीवित अवस्थामें ईश्वरदास और रतनलाल व्यापारका काम देखते थे—रामनारायण पढ़ता था। ईश्वरदास ईमानदार, दृढ़ परिश्रमी, उदार तथा सरल हृदयका मनुष्य था। रतनलाल चतुर, चालाक, स्वार्थी तथा कार्यनिपुण था और उसके मनमें अपनी बुद्धिमत्ताका मद भी था। रामनारायण था तो बड़ा बुद्धिमान्, सूक्ष्मदर्शी–पर उसका मन अभी पढ़ाईमें लगा था। पिताकी जीवित अवस्थामें ही चतुर रतनलालने अपना प्रभुत्व जमा लिया। घरभरमें उसका आतङ्क था। ईश्वरदास उसके आज्ञानुसार कार्य करता था। ईश्वरदासके मनमें भाई रतनलालके प्रति अपार विश्वास था। पर रतनलालके मनमें किसी कुसङ्गवश नीच स्वार्थ आ गया था। पिताके

मरते ही रतनलालने दोनों भाइयोंको कुछ भी न देकर अलग कर देना चाहा। सारा कारोबार तथा पूँजी उसीके हाथमें थी। रतनलालकी स्त्री लक्ष्मीदेवी बड़ी साध्वी थी। उसे पतिकी इस नीयतको देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने समझानेकी भी बड़ी चेष्टा की; पर जहाँ मनुष्य नीच स्वार्थमें फँस जाता है, वहाँ उसकी बुद्धि उलटा ही सोचती है। रतनलालने दोनों भाइयोंको कुछ भी न देकर अलग कर दिया। सारा मालमत्ता—पूँजी पहलेसे ही उसके हाथमें थी। बड़ा भाई ईश्वरदास अपनी पत्नी सरस्वती, एक लड़की तथा भाई रामनारायणको साथ लेकर खाली हाथ घरसे निकल गया। रतनलालने संतोषकी साँस ली, उसे अपनी नीच करनीपर—सफलताका बड़ा गर्व था!

भगवान्‌की व्यवस्थाका किसीको पता नहीं लगता। ईश्वरदास और रामनारायण सेठ हरजीमलजीके यहाँ नौकरी करने लगे। उधर रतनलालका कारोबार बड़े वेगसे चलने लगा। उसने मकान खरीद लिया। बड़ी शानसे रहने लगा। उसकी साध्वी पत्नी लक्ष्मीको इससे बड़ा मनःकष्ट था; पर वह बेचारी निरुपाय थी। ईश्वरदास और रामनारायणके काम, परिश्रम, सचाई, ईमानदारी तथा स्वामिभक्तिसे हरजीमल विमुग्ध हो गये। कई मौके आये। हरजीमलजीने परीक्षाके लिये भी जान-बूझकर ऐसे अवसर उपस्थित किये, पर ईश्वरदास और रामनारायणको सदा खरा सोना पाया। एक बार हरजीमलको बड़ी भारी विपत्तिसे दोनों भाइयोंने सारी विपत्ति अपने ऊपर लेकर बचाया। हरजीमलका हृदय कृतज्ञतासे भर गया।

उनके कोई संतान नहीं थी। बहुत पूँजी पास थी। उन्होंने दोनोंको दत्तक मानकर सारी पूँजी तथा कारोबार दोनोंके नाम कर दिया। दोनों लगभग करोड़पति हो गये। उधर रतनलाल एक हिसाबके गोलमालके मामलेमें पुलिसके द्वारा पकड़ा गया और जेल भेज दिया गया। उसपर फौजदारी केस चला। सट्टेका बड़ा सौदा खड़ा था। बाजार विपरीत हो गया और रतनलालका मकान ही नहीं, सारी पूँजी समाप्त हो गयी। सब कुछ जाकर और भी ऋण हो गया। यह सब तीन-चार महीनेके अंदर ही हो गया। उस समय ईश्वरदास और रामनारायण दोनों देश गये थे। रामनारायणका विवाह था। उन्हें देशमें भाई रतनलालकी विपत्तिका पता लगा। विवाह होते ही दोनों भाई तुरंत देशसे लौट आये। जेलमें रतनलालसे मिले। उसे बड़ी जमानत देकर छुड़ाया। मुकदमेकी पैरवी अच्छे वकीलोंसे करवायी। रतनलाल छूट गया, पर उसे लोगोंके रुपये देने थे। दोनों भाइयोंने मिलकर उसका सारा कर्ज चुकाया और उसको अपने साथ रखकर तीसरे भाईके नाते तीसरे हिस्सेका पूरा हिस्सेदार बना लिया। बात बहुत लंबी है, संक्षेपसे लिखी है। रतनलालका हृदय पलटा, पर उसको बड़ी मानसपीड़ा हुई। वह पागल हो गया। उसकी तीन संतान थी। तीनोंका विवाह ताऊ तथा चाचाने भलीभाँति किये। दोनों लड़की ससुराल चली गयीं। लड़का श्रीधर अपने ताऊ-चाचाके साथ घरका मालिक बनकर काम करने लगा।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

कुछ दिनों बाद पागलखानेमें ही रतनलालकी हार्ट फेल होकर एक दिन मृत्यु हो गयी। भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ; पर वे निरुपाय थे। उन्होंने रतनलालकी साध्वी स्त्रीको बड़े ही आदरसे घरकी मालकिन बनाकर रक्खा। उसकी जेठानी सरस्वती और नवविवाहिता देवरानी दुर्गा उसके आदेशानुसार घरका सारा काम करतीं। घर धन-धान्यसे, प्रेम-स्नेहसे सम्पन्न शान्ति-स्वर्ग बन गया !

—बृजमोहन

गाँगुली महाशयकी महत्ता

श्रीसत्यकृष्ण गाँगुली महोदय उन दिनों सीनियर स्कालर (Senior Scholar) थे। इसके अतिरिक्त वे संस्कृत, अरबी तथा फारसीके भी अच्छे ज्ञाता थे। भारत सरकारके विदेशी-विभाग (Foreign Department) में चार सौ रुपये मासिकपर प्रधान अनुवादक (Head Translator) का काम करते थे।

एक दिन उनके आफिसके एक क्लर्कको किसी दोषके कारण नौकरीसे अलग कर दिया गया। क्लर्कने गाँगुली महाशयसे अपीलकी दरखास्त लिखवाकर ऊपर भेज दी। इस दरखास्तमें आफिसके बहुत-से ऐसे दोष दिखाये गये थे, जिनका कोई उत्तर नहीं था। उच्चपदस्थ कर्मचारीके अतिरिक्त इन सब भेदोंके जाननेकी और किसीके लिये सम्भावना नहीं थी। बड़े साहब दरखास्त पढ़कर यह समझ गये कि दरखास्त गाँगुली महोदयकी लिखी हुई है। उन्होंने गाँगुली महाशयको बुलाकर पूछा। गाँगुलीजीने कहा—'जी हाँ! दरखास्त तो मैंने ही लिख दी थी।' साहेब बोले—'आपने

आफिसकी बहुत-सी गुप्त बातोंको क्यों प्रकट कर दिया ?' इसपर वे बोले—'वे सब न लिखता तो उस गरीबकी नौकरी चली जाती।' साहबने कहा—'जाँचके समय आप यह मत कहियेगा कि दरखास्त आपने लिखकर दी है, नहीं तो आपकी नौकरी जा सकती है।' इसपर गाँगुली महोदयने कहा—'नौकरी चली जानेमें कोई हर्ज नहीं है, पेट पालनेको काम तो और भी मिल जा सकता है; परंतु सत्यभङ्ग होनेपर तो सर्वनाश ही हो जायगा। मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगा और न मिथ्या आचरण करूँगा।'

साहब उनके चरित्रपर मुग्ध हो गये। वे उनको छोड़ना नहीं चाहते थे, इसलिये बोले—'आप एक बार सोचकर देखें–आप ऊँचे पदपर हैं, आगे चलकर आपका वेतन एक हजारसे भी अधिक हो जायगा। आप क्या उसे खो देंगे ? तीन दिनों बाद बताइयेगा।' तीन दिनके बाद उन्होंने लिखकर दे दिया कि अमुक व्यक्तिकी दरखास्त मैंने ही लिखी थी। यों स्वीकार कर लेनेपर उनकी नौकरी चली गयी। वे शिमलासे घर लौट आये। इसके बाद उन्हें (Official assgnee) आफिसमें नौकरी मिल गयी। इस सत्यनिष्ठाके लिये लोग उन्हें कलिके युधिष्ठिर कहते !

एक दिन सबेरे नौ बजेकी ट्रेनसे श्रीगाँगुली महाशय बालीसे कलकत्ता आफिसमें जानेके लिये स्टेशनपर आये। ट्रेन आनेमें कुछ देर थी, इसलिये वे स्टेशनपर बैठे थे। इसी समय एक अपरिचित व्यक्तिने पास आकर कहा—'महाशय ! मेरी यह बैग आपके पास रक्खी है, मैं अभी आता हूँ !' गाँगुली महोदय बोले—'देर न कीजियेगा, मुझे इसी ट्रेनसे कलकत्ते जाना है।' वह मनुष्य 'अच्छी

बात है'—कहकर चला गया। ट्रेन आयी और चली गयी। पर वह दिखायी नहीं दिया। गाँगुलीजी दिनभर बैग लिये स्टेशनपर बैठे रहे। उस आदमीका नाम-पता कुछ मालूम नहीं था कि उसके घर बैग पहुँचाकर छुटकारा पा लें। दिनभर प्रसन्नचित्तसे हरिनाम-जप करते रहे। संध्याके कुछ पहले वह आदमी आया और गाँगुली महाशयको बैग सँभाले बैठे देखकर चकितहृदयसे बार-बार क्षमा माँगने लगा। उस दिन गाँगुलीजी आफिस नहीं जा सके।

('भारताजिर')

और दीपक जल उठा

आँधी, वर्षा, ओले, तूफान अपने पूरे वेगपर था उस रात। उसे चिन्ता थी अपने लाड़लेकी, जो हर क्षण कालकी विकराल और अंधकारमयी सीमाकी ओर बढ़ता चला जा रहा था। किंतु वह इतनी साधनहीन हो चुकी थी कि घरमें दीपक जलानेके लिये तेल भी न था। काश, वह अपने दम-तोड़ रहे लालको किसी भी मूल्यपर बचा पाती। यदि और कुछ नहीं तो उसके उन अन्तिम क्षणोंमें वह उस मुरझाकर बिखरनेवाले फूलका मुख तो देख सकती—किसी दीपककी लौमें।

× × ×

वह आरम्भसे ही इतनी निर्धन हो—यह बात नहीं थी। उसका पति मिलिटरीमें मेजर था और कभी विवश होकर उसने

अपने पदसे त्याग-पत्र दे दिया था। पर अब वह फिर अच्छी नौकरी-पर था और उन सबका निर्वाह बड़े आरामसे हो रहा था। फिर उनके पास अपनी जमीन भी तो थी। अन्य सम्बन्धी भी धनवान् थे। उसका पिता·······बादशाहका मुख्य मन्त्री था। अपने पूर्वकर्मों और विधिके विधानोंसे बँधी उस मिलिटरीके नवयुवकके साथ पाणिग्रहण करनेके पश्चात् वह भारत आ गयी। अपने देशके इतने बड़े और सम्पन्न परिवारकी बेटीके भाग्यमें यह घोर दरिद्रताके बुरे दिन भी विधाताने लिख छोड़े थे, यह किसे पता था!

× × ×

बात कुछ यों हुई कि उसके पतिपर एक मुकद्दमा चल गया। झूठा था या सच्चा—यह तो परमात्मा जानें; क्योंकि अभीतक उसका कोई निश्चित फैसला न्यायालयसे नहीं हो पाया था। जमानत न दे सकनेके कारण पुलिस उसके पतिको पकड़कर ले गयी। उस युवतीके यौवनको देखकर सिपाहियों तथा अन्य बुरे पुरुषोंकी नजरें बदल गयीं। उसे भाँति-भाँतिके प्रलोभन दिये जाने लगे—'तुम हमारे साथ चलो। संसारके सब सुख, ऐश्वर्य लाकर तुम्हारे कदमोंमें रख दिये जायँगे।' 'मेरे पास रहा करना तुम। किसी भी चीजकी कमी कभी तुम्हें महसूस नहीं होने दी जायगी। छोड़ दो अपने पतिके वापस आनेकी आशा अब।' और ऐसी ही न जाने कितनी और बातें! परंतु वह अपने धर्मपर अटल रही। उसने निश्चय कर लिया था कि जीना है तो धर्मके रास्तेपर चलकर, अन्यथा इससे तो मृत्यु ही भली। बहुत बार उसे आत्महत्याका भी विचार आता, पर अपने

पाँच वर्षके लाड़ले और तीन वर्षकी मुन्नीको देखकर साहस न होता। आखिर वह उन्हें किसके सहारे छोड़ती? सब सम्बन्धी भी तो मुख मोड़ चुके थे। जिन्होंने उसके पतिकी जमानततक नहीं दी थी, उन्हींके अनिश्चित टुकड़ोंपर बच्चोंको छोड़नेकी अपेक्षा उसने जीवित रहकर कठिनाइयोंका सामना करते हुए पेट भरनेका निश्चय कर लिया। पतिके सिख होनेके कारण उसे गुरु नानकपर अपार श्रद्धा थी, अटल विश्वास था। उसे पूरा विश्वास था कि वही 'बाबा' उसके पतिको छुड़ाकर लायेंगे और उनकी भी रक्षा करेंगे।

पहले तो उसके पास जो पैसे थे, उन्हींकी सहायतासे दोनों समय पेटकी ज्वाला शान्त की जाती, पर धीरे-धीरे वे समाप्त हो गये। उसने एक-एक करके अपने आभूषण भी बेच डाले और जब भूखों मरनेकी नौबत आ गयी, तब कुछ दयालु पड़ोसी कुछ दिनोंतक आटा-दाल भेजते रहे। घरके नामपर उसके पास एक छोटा-सा कमरा था। टूटी-फूटी दो खाटें, एक-दो बर्तन और कपड़ोंके नामको बदनाम करनेवाले कुछ चीथड़े—और एक दीया, जिसकी लौमें बैठकर वह कुछ काम कर लेती थी रातके समय। बस, यही थी उसकी पूँजी, उसका सर्वस्व! विदेशमें अपने घरकी याद करके उसे क्या होता होगा, इसका अनुमान भी कोई कैसे कर सकता है।

× × ×

रुग्णता और निर्धनताका चोली-दामनका साथ है। जाड़ेके दिन। शरीरपर पूरे कपड़े भी नहीं। बच्चेको सर्दी लग गयी और ज्वर हो गया और वह बढ़ता ही गया। दवातक लानेके लिये उसके

पास पैसे नहीं थे। खाना-पीना तो भूल गया और हर तरहसे वह बच्चेको बचानेकी कोशिशमें लग गयी। उसके पास प्रकाश करनेके लिये दीयेमें तेल भी न था और फिर रोज-रोज माँगनेपर तो कोई देता भी नहीं। बाहर बड़े जोरका तूफान आ रहा था। ऐसा लगता था मानो इसीके साथ ही उसके जीवनका दीपक—जिसके सहारे वह आजतक जीवित थी—बुझ जायेगा। अपने 'बाबा'के सामने अपना दुःख खोलकर रख दिया उसने। आँसुओंकी झड़ी लग गयी। सच्चे दिलसे प्रार्थना निकल उठी—'बाबा! मेरे बच्चेको बचा लो। इस परिवारका चिराग बुझ रहा है। तुम्हीं रोक सकते हो। मेरे दीपकको जला दो, मैं अपने लालका मुँह तो देख सकूँ। यदि इस गहन अन्धकारमें ही यह विलीन हो गया तो तुम्हें कोई भी भक्तवत्सल न कहेगा।' दिलसे निकली पुकार सीधे दिलपर असर करती है और फिर, सुना है, भगवान् तो हैं ही बहुत कोमल-हृदय। उसकी पुकार कैसे अनसुनी कर सकते थे। उसने देखा, कमरा एकाएक प्रकाशसे भर गया। वह हैरान रह गयी देखकर कि दीपक जल रहा था, पुरानी छोटी-सी बाती उसमें थी—तेलका नाम-निशान नहीं था। उसने सोचा, शायद आँखें धोखा दे रही हैं। भागी-भागी गयी वह पड़ोसिनको बुलाने। पड़ोसियोंने देखा—सबने देखा बच्चा पहलेसे काफी स्वस्थ था और दीया जल रहा था बिना तेलके। और वह दीपक जलता ही रहा सम्पूर्ण रात्रि।

धन्य हैं भक्तवत्सल भगवान् और उनके भक्त।

—श्रीबीना चौधरी

यह पहला ही मिला

स्वर्गीय सर प्रभाशंकर पट्टणी (भावनगरके दीवान) उन दिनों बंबईमें थे। वे प्रतिदिन नियमपूर्वक ताजमहल होटलसे अपने एक मित्रके साथ कोलाबा कॉजवेतक घूमने जाया करते। एक दिन सबेरे वे कोलाबा कॉंजवेपर घूम रहे थे कि एक पागल-जैसे भिखारीने पुकारकर कहा—'अरे ओ पट्टणा ! बगुलेकी पाँख-जैसे सफेद कपड़े पहनकर क्यों चक्कर लगाया करता है ? मैं तेरे गाँवका हूँ। बहुत दुखी हूँ, कुछ दे न, पट्टणा।'

पट्टणी साहेबके साथी श्रीमोहनभाईको तो यह सुनकर कुछ क्षोभ हुआ; परंतु पट्टणी साहेबने शान्तिसे मोहनभाईसे पूछा—'आपके पास कुछ है क्या ?' मोहनभाईने उत्तर दिया—'चार-आठ आने पैसे होंगे, बाकी तो सौ-सौके नोट हैं।' पट्टणी साहेबने दो नोट यानी दो सौ रुपये उनसे लेकर भिखारीको दे दिये और कहा—'ये दो सौ रुपये लो, और जरूरत हो तब मुझे भावनगर लिखना, संकोच मत करना; धंधा-रोजगार शुरू करना। इस बड़े शहरमें मेहनत करोगे तो फिर जीवन-निर्वाहमें कठिनता नहीं होगी।'

भिखारी तो आश्चर्यसे उनकी ओर देखता रह गया और अपकारके बदले उपकार करनेवाले श्रीपट्टणी साहेबके पैरोंमें लोट गया। कुछ आगे बढ़नेपर मोहनभाईसे नहीं रहा गया और उन्होंने कहा—'ऐसी भद्दी भाषाका प्रयोग करनेवालेको इतनी बड़ी रकम देकर आपने उसे क्यों प्रोत्साहन दिया, यह मेरी समझमें नहीं आता।' सर प्रभाशंकर भाईने कहा—'देखिये ! मुझे सर, साहेब, दीवान साहेब, प्रभाशंकर भाई, पट्टणी साहेब आदि कहनेवाले तो बहुत मिलते हैं, परंतु 'अरे पट्टणा' कहनेवाला तो यह पहला ही मिला और इससे सचमुच मुझे बड़ा मजा आया।' (अखण्डानन्द)

आदर्श मानवता

यह घटना भी उन्हीं दिनों सन् ४७ की है, जिन दिनों राजस्थानके उत्तरी-पूर्वी जिलोंमें उपद्रव मच रहे थे । पाकिस्तानमें हो रहे हिंदुओंपर भीषण अत्याचारोंके समाचारोंको सुनकर हिंदुओंमें अत्यन्त क्षोभ छा रहा था । इससे यहाँ भी गृहदाह, लूट-पाट और हत्याकाण्ड आरम्भ हो गये । इस कुसमयमें हमें एक घटना ऐसी देखनेको मिली, जो मानवताका एक अद्भुत उदाहरण है । जिलेके एक गाँवमें एक रिटायर्ड मुसल्मान अफसर रहता था ! उसके पड़ोसमें एक हिंदू ब्राह्मण रहता था, जो कभी उस अफसरके पास एक चतुर्थ श्रेणीका कर्मचारी रह चुका था । साम्प्रदायिकताकी लहर उस गाँवमें भी पहुँची । मुसल्मानोंको सब कुछ छोड़कर भागना पड़ रहा था और उनकी जान खतरेमें थी । अतः उस मुस्लिम अफसरको भी अपना और अपने परिवारका भय हुआ और उसने अपने पुराने ब्राह्मण पड़ोसी नौकरसे बचनेका उपाय पूछा । उसने कहा—'आप चिन्ता मत कीजिये । मैं आपके परिवारसहित आपको सकुशल युक्तप्रान्तमें पहुँचा दूँगा, जहाँ आप अपनेको सुरक्षित समझेंगे ।' इतना कहनेपर भी मुस्लिम अफसरको विश्वास नहीं हुआ । रातके समय वह ब्राह्मण पड़ोसी एक ट्रक किरायेपर लाया । वह खुद भी ट्रक चलाना जानता था, उसने वह ट्रक मुसल्मान अफसरके घरके सामने खड़ी कर दी । उसने मुस्लिम अफसरको और उसके परिवारके सब लोगोंको उसमें बैठा दिया और उनके

ऊपर चादर-कपड़े आदि डाल दिये और उनको समझाकर कह दिया कि वे रास्तेभर चुप रहें। फिर वह ट्रक चलाकर गाँवके बाहर निकल गया। ट्रक अपनी पूरी गतिसे जा रही थी। एक स्थानपर बहुत-से हिंदुओंने ट्रकको रोक लिया और उससे पूछा कि 'इस ट्रकमें क्या है, कोई मुसल्मान तो छिपकर नहीं जा रहा है?' उसने कहा कि 'यह सामान तो एक हिंदू अफसरका है, जो मेरठके पास एक गाँवमें रहते हैं। उनका तबादला हो गया है, अतः मैं उनका सामान उनके घर पहुँचाने जा रहा हूँ।' कुछ हिंदू उसको जानते थे। उसे ब्राह्मण समझ उसकी बातोंको सच मानकर उन्होंने ट्रकको जाने दिया। रातका समय था। फिर आगे किसीने ट्रक नहीं रोकी। थोड़ी ही देरमें ट्रक यू० पी० (U. P.) के एक गाँवमें आ पहुँची, जहाँ उस मुस्लिम अफसरके रिश्तेदार रहते थे। अफसर अपने परिवारसहित वहीं रुक गया और उसने उस ब्राह्मण पड़ोसीके प्रति अपने और अपने परिवारके प्राणोंकी रक्षाके लिये बहुत कृतज्ञता प्रकट की। वह ब्राह्मण पड़ोसी सकुशल वापस अपने गाँवको लौट गया। उन दुर्दिनोंमें एक रिटायर्ड अफसरके प्रति एक पुराने नौकरके द्वारा सच्ची स्वामिभक्ति दिखलानेका एवं आदर्श पड़ोसी-धर्म तथा सच्ची मानवताका एक अद्भुत उदाहरण है। यह घटना उसी नौकरने मुझे सुनायी है और अभी भी वह नौकर है, जहाँ मेरे अग्रज भ्राता न्यायाधीश हैं।

—श्याममनोहर व्यास, बी० एस्-सी०

सच्चा शिक्षित कौन ?

मैं रहता तो हूँ नडियादमें, पर मेरा गाँव सरसवणी है। इससे बीच-बीचमें घर जाया करता हूँ। बरसातमें मोटर बंद रहती है, इससे पैदल जाना पड़ता है। गत बरसातमें मुझे एक बार सरसवणी जाना पड़ा। मैं सींहुजसे चला। कुछ दूर जानेपर मुझे प्यास लगी। पास ही खेतमें एक कुँआ था। मैं वहाँ गया। किसान झोंपड़ी डालकर वहाँ रहता था। मैं पहुँचा, उस समय वह काम कर रहा था। मैंने कुएँसे जल निकालनेके लिये उससे डोल-डोरी माँगे। किसानने सहर्ष डोल-डोरी लाकर पानी निकाल दिया। जल पीकर मैंने खेती-बाड़ी और कुएँके विषयमें बात चलायी। मैंने कहा—'कुँआ नया ही बनवाया मालूम होता है, इसका जल अच्छा है।' उसने कहा—'हाँ जी, सभी लोग ऐसा ही कहते हैं।' यह सुनकर मैंने पूछा—'यह कैसे ?' वह बोला—'मैंने इसका जल नहीं पीया है।' इसपर मैंने पूछा—'क्यों नहीं पीया ?' उसने उत्तर दिया—'भाई ! इस कुएँको करानेके लिये मैंने एक बनियेसे ब्याजपर रुपये लिये हैं और मैंने यह संकल्प कर लिया है कि जबतक पूरा ऋण नहीं उतार दूँगा, तबतक इस कुएँका जल नहीं पीऊँगा। अभी कुछ रुपये देने बाकी हैं, वे भी चुकता दे दिये जायँगे; परंतु तबतक मैं जल कैसे पी सकता हूँ ?'

ऐसे उन्नत भावना-सम्पन्न किसानके प्रति मेरे हृदयमें बड़ा सम्मान उत्पन्न हो गया। आजकल समाचारपत्रोंमें पढ़ते हैं कि लोग पैसोंके लिये कैसे-कैसे प्रपञ्च रचते और बेईमानी करते हैं। शिक्षित कहलानेवाला वर्ग धनके लिये कुछ भी करनेमें नहीं हिचकता।

ब मनमें यह प्रश्न उठता है कि कहाँ यह शिक्षित सुधरा हुआ र्ग और कहाँ यह अपढ़ किसान ? इनमें चरित्रवान् कौन है ? सच्ची शिक्षा किसने प्राप्त की ?

(अखण्ड आनन्द)

सहृदयता

वर्षों पहलेकी बात है—कलकत्तेमें एक बहुत अच्छा फर्म माना जाता था। उनका आसाममें भी कारोबार था। कलकत्तेमें गल्ले तथा आढ़तका काम था। फर्मके मालिक दो भाई थे--सदाराम और धनपतराय। इस फर्ममें पहले इनके दो भानजोंकी भी हिस्सेदारी थी, पीछे वे अलग हो गये थे। एक भानजे रूढ़मल कुछ तेज मिजाजके थे। वे दोनों मामासे बहुत नाराज रहने लगे और उनको नुकसान पहुँचानेकी तरकीब सोचने लगे। सदारामजीकी एक लड़की वहीं ब्याही थी, उसका देहान्त हो चुका था। उसके पति भीमराज तथा लड़के मन्नालाल थे। उनका साधारण कारोबार था। बड़े अच्छे आदमी थे।

एक दिन रूढ़मल अपने मामाके दामाद भीमराजके पास गये और बोले--आपको पता ही नहीं है, मैं एक बड़े लाभकी बात बताता हूँ—आपकी पत्नीके पचपन हजार रुपये हमारे मामाके फर्ममें जमा हैं। उनकी लड़की तो मर गयी, अब वे उन रुपयोंको हड़पना चाहते हैं। आप उनसे माँगिये, न दें तो नालिश कर दीजिये। आपके व्यापारमें रुपयोंकी आवश्यकता है। आवश्यकता न भी हो तो भी अपने रुपये क्यों छोड़े जायँ। आप जानते हैं—

हमलोग हिस्सेदार थे । सारा बहीखाता मैं ही करता था । रुपये मेरे सामने ही आपकी पत्नीने जमा कराये थे । कुछ उसके थे, कुछ मामीने उसको दिये थे । हर साल ब्याजका जमा-खर्च होता है । बीच-बीचमें रुपये उठे भी हैं, इसलिये तिमादीका सवाल नहीं है । मैं सब प्रमाण पेश कर दूँगा तथा गवाही भी दूँगा । उनको बेईमानीसे लड़कीका पैसा क्यों हड़पने दिया जाय ?'

भीमराजका मन एक बार तो कुछ ललचाया, क्योंकि बहुत बड़ी रकम थी और उन्हें रुपयोंकी आवश्यकता थी; पर वे बिना हकका एक पैसा भी नहीं लेना चाहते थे । उनका साधारण कारोबार था । कपड़ेकी दूकान थी । कुछ आढ़तका भी काम था । पर वे झूठ नहीं बोलते थे तथा कभी किसीके साथ धोखेका व्यवहार नहीं करते थे । वे अपनी सचाईके लिये प्रसिद्ध थे । अतएव उन्होंने श्रीरूढ़मलजीको तो यह कहकर विदा कर दिया कि आपने मेरे बड़े उपकारकी बात बतलायी है । मैं मन्नालालसे बात करके उचित कार्रवाई करूँगा और फिर मन्नालालको बुलाकर रूढ़मलकी कही हुई सारी बातें बतायीं ।

मन्नालाल उम्रमें तो अभी छोटा ही था, पर था बड़ा विचक्षण बुद्धिमान् । सब बात सुनकर उसने कहा—'पिताजी ! आप रूढ़मलजीका स्वभाव जानते हैं । यह भी हमलोगोंको पता ही है कि ये अपने मामासे अन्यायपूर्वक लड़ चुके हैं, उन्हें बार-बार परेशान करनेकी धमकी दिया करते हैं । फिर माँके पास रुपये ही कहाँ थे, जो वह जमा कराती । इसमें अवश्य ही कोई दूसरी बात है । अपने रुपयेकी बात सुनकर न तो मन चलाना चाहिये और न

बिना पूरी बातका पता लगाये नानाजीसे ही कुछ ऊँची-नीची बात करनी चाहिये ।' भीमराजको यह बात जँची और वे दोनों सदारामजीके पास उनके घर गये । उन्होंने जाकर सदाकी भाँति सदारामजीको प्रणाम किया और सदारामजीने बड़े स्नेहसे उन्हें अपने पास बैठाया । सदारामजीके चेहरेपर बड़ी उदासी छायी थी, इससे भीमराजजीने पूछा—'बाबूजी ! आप इतने उदास क्यों दिखायी देते हैं !' यह सुनते ही सदारामकी आँखोंमें आँसू भर आये । वे बोले—'क्या बताऊँ, जिसे पाल-पोसकर बड़ा किया, जो घरका बच्चा था, वही आज वैरी बनकर हमलोगोंको परेशान कर रहा है । अमुक साल अपने यहाँ रंगूनसे चावल मँगवाये गये थे । पर दैवका विधान, चावल पहुँचते ही बाजार मन्दा रह गया । लगभग एक लाख रुपयेका नुकसान हुआ । कुछ रुपये उसी साल दुर्भाग्यवश आढ़तियोंमें अटक गये, शेष घरकी पूँजी व्यापारमें लग रही थी । इज्जतका सवाल था । उस समय रूढ़मल तथा उसके बड़े भाईके पास अलग रुपये थे, पर उन्होंने एक पैसा नहीं दिया । बल्कि फर्ममेंसे कुछ और रुपये उठा लिये । मैं बड़ी परेशानीमें था । घरमें कुछ गहना था; कुछ रामा (भीमराजकी स्त्री—सदारामकी लड़की) की माँका, कुछ रामाकी बड़ी बहिन सुभद्राका था । मरता क्या न करता । वह गहना बेचा गया और लगभग चालीस हजार रुपये उठे । उसमें अधिकांश गहना सुभद्राका था । सुभद्रा ससुराल थी । इस प्रकार काम निकाला गया । कमानेपर सुभद्राको दूसरा गहना बनवा देना है, इस विचारसे वे रुपये रामाके नामसे जमा कर लिये गये । रामासे कह भी दिया था, पर दुर्भाग्यसे वह

मर गयी। ब्याज लगाना ही था; क्योंकि रुपये सुभद्राके थे। ब्याज लगते-लगते अब लगभग पचपन हजार हो गये हैं। उस जमा-खर्चमें हस्ते रूढ़मल लिखा है। अब परसों रूढ़मल मेरे पास आकर बोला कि मुझे दस हजार रुपये दो, नहीं तो मैं भीमराजसे कहकर नालिश करवाऊँगा और गवाही भी दूँगा। साथ ही वह कह रहा है कि 'मैं सुभद्राके पतिसे सारा हाल बताकर आपकी नाक कटवा दूँगा। 'सो अब मैं क्या करूँ। वह यदि आपके तथा सुभद्राके पतिके पास पहुँचकर उल्टी-सीधी समझा देगा और आप तथा वे उसकी बातोंमें आकर मुझे परेशान करेंगे तो मैं कहाँ मुँह दिखाऊँगा। सुभद्राके पति बड़े भल आदमी हैं, वे समझते हैं गहना वहाँ पड़ा है। कभी मँगाते हैं तो मैं टालमटोल कर देता हूँ। सुभद्रा बेचारी सब जानती है, वह मेरी सहायता करती है। लोग समझते हैं, कारोबार बहुत अच्छा है, पर भीतरी स्थिति कोई नहीं जानता। आप सारी बातें सुभद्रासे जान लें।' यों कहते-कहते वे फुफकार मारकर रोने लगे।

सुभद्रा वहाँ आयी हुई थी, वह तथा उसकी माँ (सदारामकी पत्नी) भी कमरेमें आ गयी। सारा हाल जानकर वे भी रोने लगीं। भीमराज तथा मन्नालालके भी आँसू बहने लगे। कुछ देर बाद भीमराजने कहा—'पिताजी! आप घबराइये नहीं। रूढ़मलजीकी कोई बात नहीं सुनी जायगी।' भीमराजसे आश्वासन पाकर सदारामको धैर्य हो गया। वे बोले—'सुभद्रा पास बैठी है। उसकी लड़कीका ब्याह अगले महीनेमें है। इसके पति अब गहनेके

लिये तकाजा कर रहे हैं । इन्हें आवश्यकता है, कैसे क्या किया जाय ?'

तब मन्नालाल अपने पिता भीमराजको अलग ले गया और बातचीत करके आकर बोला—'नानाजी ! आप चिन्ता मत कीजिये । हमलोगोंने इसका उपाय सोच लिया है । सुभद्रा मौसीका लगभग तीस हजारका गहना है । सलकियामें हमारा पुराना बागीचा तथा मकान है, उसे बेचनेको बत्तीस हजार रुपयेमें बात हो रही है । अब वह काम जल्दी करके सुभद्रा मौसीजीका गहना बनवा दिया जायगा । व्यापारके लिये मकान बेच रहे थे । सो वह पीछे देखी जायगी । कोई आँट तो लगी ही नहीं है ।'

सदारामको बड़ा संकोच हुआ, वे फिर रोने लगे; परंतु बड़ा आश्वासन भी मिला । भीमराज तथा मन्नालाल उन्हें फिर आश्वासन देकर प्रणाम करके चले गये और दो-चार दिनोंमें ही मकान बेचकर रुपये सदारामको दे दिया । सुभद्राका गहना बनवा दिया गया । इन पचपन हजारके लिये भीमराजने सदारामजीको रुपये चुकतीकी फाड़खती लिख दी । रूढ़मलकी सारी योजना नष्ट हो गयी* । धन्य !

—हनुमानबक्स अग्रवाल

---

* घटना अक्षरशः सत्य है, केवल नाम बदले गये हैं ।

रामनामका प्रभाव

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतन्मयोच्यते ।
स्मरन्तो रामनामानि नावसीदन्ति मानवाः ॥

लगभग तीस वर्ष पहलेकी बात है, मेरे पिताजीका शरीर पूरा हो गया । घरपर माताजी और छोटा भाई रह गया । मैं पहलवानी करने लगा और जुआ खेलने लगा । अभिमान इतना बढ़ गया कि मैं अपने-जैसा बहादुर किसीको समझता ही न था । किसीको लाठी या चपत मार देना तो मैंने खेल-सा ही समझ रक्खा था । एक दिन एक निर्दोष मुसल्मान दर्जीको मैंने बुरी तरह पीट दिया । उसको बहुत चोट लगी । उसकी ऐसी हाय पड़ी कि दो ही दिनों बाद मेरी इतनी पिटाई हुई कि मुझे दूधके साथ हल्दी खानी पड़ी । तब मेरी आँखें खुलीं । मैंने सोचा कि जैसा दुःख मुझे हुआ, ऐसा ही औरोंको भी होता होगा । कुछ दिनों बाद मैं ऋषिकेश चला गया । वहाँ गङ्गातटपर एक संत बैठे भिक्षा कर रहे थे, जो आजकल कई वर्षोंसे शायद उत्तरकाशीमें हैं । मैंने उनके चरणस्पर्श किये, वे मुझे अपने साथ ले गये । मैंने उनको सारा हाल सुनाया । उन्होंने मुझसे कहा, 'भगवान्की आपपर बहुत बड़ी कृपा है । जिसपर भगवान् कृपा करते हैं, उसका अभिमान शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं । आपका

अभिमान बढ़ गया था। भगवान्‌ने उसे शीघ्र नष्ट कर दिया। भगवान् आपको अपना बनाना चाहते हैं। अतएव तुरंत उनके बन जाइये और तो सब काम करके देख ही लिये। अब भगवान्‌का भजन कीजिये। गीता-रामायण पढ़िये, संतोंका संग कीजिये तथा तीर्थयात्रा कीजिये।' ये सारी बातें मेरी समझमें आ गयीं।

उन दिनों सर्दी थी, मैं पहले श्रीजगन्नाथजी चला गया। कुछ दिनों बाद गरमी आनेपर केदारनाथ तथा श्रीबद्रीनारायणकी यात्राके लिये चल दिया। देवप्रयाग पहुँच गया, धर्मशालामें बैठा था। बड़े जोरसे आँधी आयी और मेरी आँखोंमें मिट्टी भर गयी। आँखसे पानी चलना शुरू हो गया और आँखें बहुत लाल हो गयीं।' सुबह डॉक्टरसे ओषधि डलवायी और उसी दिन मोटरद्वारा मैं श्रीनगर पहुँच गया। श्रीनगरमें फिर वैद्यजीसे औषध गिरवायी। श्रीनगरमें एक परिचित सज्जन मिल गये धर्मशालामें। उन्होंने भी आँखकी दशा खराब देखकर औषध दी। अगले दिन रुद्रप्रयाग पहुँच गया, परंतु कोई आराम न हुआ। स्नान करके गीताका पाठ करने लगा तो पाठ न हो सका। उस समय मुझे कितना दुःख था, मैं ही जानता था। जब कोई उपाय नहीं दिखायी दिया, तब दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली—'हे भगवन्! चाहे आँख फूट भी जाय, अंधा हो जाऊँ, परंतु श्रीबद्रीकेदारके दर्शन किये बिना तो लौटनेका नहीं।' प्रतिज्ञाके साथ-साथ मुझे गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके शब्द याद आ गये। उन्होंने 'रामचरितमानस'के बालकाण्डमें कहा है—

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥

इन शब्दोंके याद आते ही बड़ा विश्वास उत्पन्न हो गया। जो ओषधि बची हुई थी, उसे फेंकने लगा। फिर सोचा, फेंकनेसे अच्छा किसीको दे दूँ। सामने ही पहाड़पर रहनेवाला किसी गाँवका कोई पुरुष खड़ा था, उसे दे दी और 'राम-राम' जपता हुआ मैं चल दिया। कुछ दूर चलनेपर आराम-सा प्रतीत हुआ। कुछ दूर और चला तो बहुत आराम दिखायी दिया। और कुछ बढ़ा तब तो बहुत ही आराम दिखायी दिया। राम-रामका जप मन-ही-मनमें हो रहा था। कुछ दूर और पहुँचा तो आँखें बिल्कुल ही ठीक हो गयीं। वाह रे मेरे राम-नाम! डॉक्टर-वैद्यकी औषधसे कुछ भी नहीं हुआ; पर राम-राम कहनेसे पाँच ही मिनटमें आँख एकदम ठीक हो गयी। कुछ देर वहीं बैठा रहा। भगवान्‌से नाना प्रकारकी प्रार्थना करता रहा। फिर चल दिया और बड़े आनन्दसे श्रीकेदारनाथ तथा श्रीबद्रीनारायणके दर्शन करके लौट आया। जो सुख चाहते हैं, जो लोक तथा परलोकको सुधारना चाहते हैं, वे राम-नामका जप करें। इस लेखके पाठको! जिस दिनसे मैंने भगवान् श्रीरामजीकी शरण ली है, मैं कितना सुखी हूँ, मैं ही जानता हूँ और शरीरोंकी तो मुझे याद नहीं, परंतु इसी शरीरसे तो लगभग—

देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं॥

—आसाराम व्यास

देवतुल्य डॉक्टर साहब

मेरे घरके बगलमें ही एक औषधालय है। उसमें सरकारकी ओरसे सरकारी चिकित्सक रमेश बाबू नियुक्त हैं। चिकित्सककी ख्याति और प्रसिद्धि गाँव-गाँवमें फैली हुई है। उनके यशकी गाथा घर-घर गायी जाती है। गत कई वर्षोंसे मेरा स्वास्थ्य एकदम चौपट हो गया था। बहुत दवाइयाँ हुईं, बहुत रुपये खर्च हुए; पर सब बेकार। बड़े-बड़े डॉक्टरोंकी राय ली गयी, किंतु सब निरर्थक साबित हुई। मैं जीवनसे पूर्णतया निराश हो चुका था। अब मेरे परिवारको देखनेवाला कोई न था। मेरी सम्पत्तिको भोगनेवाला कोई उत्तराधिकारी भी न था। घरमें नयी पत्नी और बूढ़ी माँके सिवा और कोई अपना न था। हाँ, दस-बारह वैतनिक स्वार्थी व्यक्ति अवश्य थे। सभी चिन्तित और व्याकुल थे। मेरी मानसिक पीड़ा और व्यथाका क्या कहना!

रविवारका दिन था। मैं खिन्न मन छतपर बैठा अपनी दुर्गतिपर पछता रहा था और ईश्वरसे मनौती मना रहा था कि जितनी जल्दी हो, मुझे इस यातनासे मुक्त कर दे। इतनेमें मेरा व्यक्तिगत सेवक रामूसिंह आकर बोला—'हुजूर! आपको रमेश बाबू बुला रहे हैं।' नौकरकी बात सुनकर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। मैं चौंक-सा गया। आखिर रमेश बाबू क्यों मुझे बुला रहे हैं। उनसे तो मेरी जन्मजात परम्परागत शत्रुता है। मैंने हर तरहसे उन्हें तंग कर दिया था। झूठ-मूठके मुकदमे चलाकर तथा जालसाजी करके उन्हें प्रायः नष्ट ही कर डाला था। यहाँतक कि उन्हें अपनी सारी जायदाद बेच देनी पड़ी थी तथा वे अब सिर्फ नौकरीके ही बूतेपर

अपने परिवारका भरण-पोषण कर रहे थे। इतना होते हुए भी वे सत्य-पथपर अडिग थे तथा निर्दोषी होनेके नाते वे कभी भी मेरे सामने नहीं झुके। अस्तु !

मैं रमेश बाबूसे मिला। उन्होंने मेरी दयनीय अवस्थाके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए मुझे सान्त्वना दी तथा स्वयं मेरी इलाज करनेकी इच्छा प्रकट की। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि 'मैं आपकी खुशामद करनेके लिये या आपके डरसे ऐसा करनेके लिये आपकी अनुमति नहीं चाहता हूँ, वरं एक डॉक्टर होनेके ही नाते सारी ईर्ष्या और प्रतिशोधकी भावनाको भूलकर आपकी सेवा करना चाहता हूँ। प्रत्येक डॉक्टरका यह परम पुनीत कर्तव्य होता है कि वह यथासाध्य रोगियोंको स्वास्थ्य प्रदान करे।'

मैंने किसी प्रकार डरते-डरते उनकी दवा खाना प्रारम्भ कर दिया। मेरे सम्बन्धियों एवं शुभेच्छुकोंने मुझे बहुत रोका कि 'बेकार क्यों जानको खतरेमें डाल रहे हैं। यह डॉक्टर आपका शत्रु है, विषको औषधरूपमें देकर अपना बदला लेगा। मैंने उनकी एक न सुनी और दवा खाना जारी रक्खा। डॉक्टर साहबके दोस्तोंने उनसे भी कहा कि 'शत्रुसे बदला चुकानेका इससे अच्छा स्वर्ण-अवसर फिर नहीं आनेका है।' उनके निकटस्थ सम्बन्धियोंने भी उनसे बहुत अनुरोध किया। पर डॉक्टर साहबने किसीकी एक भी नहीं सुनी और वे सचाई तथा ईमानदारीके साथ मेरी सेवामें लगे रहे।

मेरी दवा करते देख डॉक्टर साहबके घरवाले उनपर बहुत नाराज हुए। यहाँतक कि मेरे ही मुकदमेको लेकर डॉक्टर साहबको

बहुत कष्ट उठाना एवं यातनाएँ झेलनी पड़ीं । पर अपने विचारोंके पक्के सच्चे जनहितैषी डाक्टर साहब सब खुशी-खुशी सह गये तथा उन्होंने उन सबको बहुत समझाया कि 'जीवोंपर दया करना सीखो । जो तुम्हारी बुराई करे, उसका भी तुम भला करो । भगवान् निश्चय ही तुम्हारा भला करेंगे । बुराई करनेवालेका भी भला करना और उसपर क्षमाकी दृष्टि रखना मनस्वी मानवका परम कर्तव्य है और यह मानवताका संदेश है ।'

कुछ ही दिनोंमें धीरे-धीरे भगवान्की कृपा तथा सहृदय साधुस्वभाव डाक्टर साहबकी सतत साधनासे मैं भला-चंगा हो गया । परम कृतज्ञ होकर अत्यन्त हर्षमें मैंने डाक्टरजीसे कहा—'आप जो कुछ भी चाहें, मुझे सेवा फरमाइये ।' उन्होंने हँसते हुए कहा—'मैं आपसे कुछ भी लेना नहीं चाहता । आप अच्छे हो गये इसीमें मुझे बड़ी खुशी है । मेरा जो कर्तव्य था, एक मनुष्यके नाते, मैंने उसीको पूरा किया है ।'

मैं डॉक्टर साहबकी साधुता-सज्जनताका बड़ा कायल हूँ । मेरे मनसे सारा वैर-विरोध तो निकल ही गया, उसी दिनसे मैंने यह दृढ़ संकल्प कर लिया है 'मैं जीवोंपर दया करूँगा तथा बुराई करनेवालोंकी भी भलाई ही करूँगा ।' डाक्टर साहबके बर्तावका मुझपर बड़ा ही प्रभाव पड़ा ।

धन्य हैं डॉक्टर साहब, जिन्होंने इस कलियुगमें भी सत्ययुगका बर्ताव करके दिखला दिया । इन्हींके समान और लोग आचरण करने लगें तो दुनियाका नक्शा ही बदल जाय । —बैकुण्ठ ओझा

अनुभूत सत्य

(रोग-मुक्तिका अनुभूत सहज साधन)

[एक सज्जन अपना नाम-पता कुछ भी न बताकर लिखते हैं—]

मैं इन साधनोंके फलस्वरूप भयंकर कुष्ठरोगके चंगुलसे बच निकला हूँ । कुष्ठ, क्षय (टी० बी०) अथवा कोई भी रोग क्यों न हो, इन साधनोंसे नष्ट हो जाता है । परीक्षा करके देख लें—

(१) प्रतिदिन प्रातःकाल ४ बजे स्नान करके आक (अर्क या मदार, जिसका दूध लगानेसे आँखें नष्ट हो जाती हैं) के पेड़पर जल चढ़ावे । ४१ दिनोंतक प्रतिदिन जल चढ़ाकर ४१ वें दिन चावल, रोली और गुणसे आकके वृक्षकी पूजा करे ।

(२) दो महीनेतक प्रत्येक चौथे दिन (बिना व्याथी) बछियाका गोमूत्र एक छटाँक (अधिक नहीं) पान करे । सुबह खाली पेट ताजा गो-मूत्र पीना चाहिये ।

(३) प्रतिदिन सुबह-शाम भ्रामरी प्राणायाम करे । विधि यह है—खुली हवामें बैठकर पहले नासिकाके दाहिने छिद्रको दाहिने हाथकी अंगुलीसे बंद करके बायें नथुनेसे हवा खींचे, फिर बायें छिद्रको बंद करके दाहिने नथुनेसे भ्रमरकी तरह गुंजन करते हुए धीरे धीरे हवा छोड़े । पुनः इसी प्रकार दाहिनेसे खींचकर बायेंसे भ्रमर-गुंजनसहित छोड़े । इस प्रकार आठ-दस बार करे और मनको कानकी भीतरी आवाजपर केन्द्रित करे । इसे जीवनभर करता रहे तो यह बहुत ही लाभदायक है ।

तीनों साधनोंको साथ-साथ करनेवाला निःसंदेह बहुत शीघ्र रोग-मुक्त होगा। शर्त यह है कि जो कोई भी इन साधनोंसे रोग-मुक्त हो, वह फिर सात्त्विक और सत्-जीवन बितावे। नहीं तो वह मुझसे ही नहीं, भगवान्‌से भी विश्वासघात करेगा।

—मानव-हितैषी अज्ञात

परदुःखकातर परोपकारी पुरुष

घटना २६ अप्रैल १९५९ की है। मैं सपत्नीक एक विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये गंज बासौदा जा रहा था। मैं सायंकाल सात बजे झाँसी पहुँचा। बस-स्टैंडसे रेलवे स्टेशनके लिये एक ताँगा किरायेपर किया। प्रथम तो ताँगेवालेने बारह आने माँगे; किंतु मैंने उससे आठ आने देनेको कहा। उसने इसे स्वीकार तो कर लिया, किंतु एक शर्तपर कि मैं मार्गमेंसे एक सवारी और बैठा लूँगा। मैंने उसे स्वीकृति दे दी। रात्रि तो हो ही गयी थी। वह केवल दस ही कदम चला था कि एक सामानरहित नवयुवकने उसे रोककर कहा—स्टेशन चलना है, क्या लोगे? उसका चार आनेपर सौदा तै हो गया।

मैंने अपना बक्स, जिसमें पत्नीके आभूषण आदि थे और ताला लगा हुआ था, आगे रख दिया तथा मैं भी आगे बैठ गया था; किंतु जब वह नवागन्तुक व्यक्ति आया, तब ताँगेवालेने मुझसे पीछे बैठ जानेका अनुरोध किया। चूँकि मेरी पत्नी पीछेकी सीटपर थीं, अतएव मैं ही पीछे बैठूँ, यह स्वाभाविक था। अतः वह नवागन्तुक व्यक्ति आगे बैठ गया और मैं पीछे। मेरा बक्स आगे

ही रक्खा रहा। जब स्टेशन पचास गजकी दूरीपर रह गया, तब वह नवागन्तुक व्यक्ति यह कहकर कि मुझे 'बीड़ी लाना है' उतर गया, यद्यपि उस निर्जन स्थानमें कोई पान-बीड़ीकी दूकान नहीं थी। थोड़ी ही देर बाद स्टेशन आ गया। वहाँ पहुँचनेपर ताँगेवालेने अति विनीत भावसे कहा—'बाबूजी! सामान सँभाल लीजिये।' चूँकि गरमीका मौसम था। अतएव सामान सीमित ही था। बक्स आदि एवं बक्समें तालेको ठीक देखकर मैंने कहा—'ठीक है।' सामान मुसाफिरखानेमें रक्खा, तबतक ताँगेवाला चला गया था।

कुछ ही क्षणों बाद एक बूढ़ा ताँगेवाला मेरे पास आया और उसने मुझसे कहा कि 'बाबूजी! बक्स खोलकर देख लीजिये।' मैंने उसे झिड़क दिया और उससे कहा कि 'दीखता नहीं है, ताला पूर्ववत् लगा है। बेचारा चुप होकर लौट गया, किंतु फिर भी उसका मन न माना और फिर आकर वह मुझसे कहने लगा कि 'बाबूजी! मेरा कहना मानिये। एक बार बक्स खोलकर देख तो लीजिये। आपका बिगड़ता ही क्या है।' अबकी बार मैं उसके कथनकी उपेक्षा न कर सका और पत्नीसे बक्स खोलकर देखनेको कहा। पत्नीने जब बक्स खोलकर देखा, तब उसमेंसे आभूषणोंकी पोटली गायब थी। मैं आश्चर्यमें डूब गया। ताला ज्यों-का-त्यों लगा हुआ था, फिर यह क्या हो गया। दूसरे यात्री कहने लगे 'ताला लगा रहे और गहना चला जाय, यह हो नहीं सकता।' कोई कहने लगे, 'घर छोड़ आये होंगे' आदि। मुझे इस विविध विचारसागरमें कहीं किनारा नहीं दीख पड़ा। अन्ततः मैंने भगवान्‌का स्मरण किया और कुछ सोचा। तत्काल मेरे मस्तिष्कमें दो प्रश्नोंका उदय हुआ।

१—वह नवागन्तुक व्यक्ति बीचमें ही उतर गया जब कि वहाँ पान-बीड़ीकी कोई दूकान नहीं थी, ऐसा क्यों हुआ ?

२—तांगेवालेने विदा होते समय ऐसा क्यों कहा कि 'बाबूजी ! सामान सँभाल लीजियेगा ।' जब कि साधारणतया ईमानदार ताँगेवाले ऐसा नहीं कहा करते हैं ।

मैंने तुरंत निर्णय कर लिया कि ताँगेवालेने ही आभूषणोंका अपहरण किया है । मैं किंकर्तव्यविमूढ़ तो हो ही गया था, मुझे ताँगेका नंबर भी याद नहीं था । अब क्या किया जा सकता था । हमलोग इस अप्रत्याशित घटनाके लिये प्रस्तुत न थे । कहाँ विवाह और कहाँ यह अकस्मात् बरबादी ! किंतु इस वेदना-सागरमें हमें उस वृद्धका सहारा था । उसने हमें सान्त्वना दी और कहा कि 'घबराओ मत, सब मिल जायगा ।' उसने मेरी पत्नीसे कहा कि 'सम्पूर्ण गये हुए आभूषणोंकी एक सूची बना दो ।' पत्नीने सूची बनाकर मुझे दे दी । उसके पश्चात् वह मुझे ताँगा-यूनियनके अध्यक्ष श्रीलक्ष्मीनारायणजी चौधरीके पास ले गया । श्रीचौधरीजीको उसने आद्योपान्त सब विवरण सुना दिया और उस ताँगेवालेका नाम भी बता दिया, जिसमें मैं आया था । वृद्ध कर्तव्यनिष्ठ चौधरीजीने उसकी खोजके लिये चार ताँगे छोड़े । एक ताँगेमें मैं और चौधरीजी स्वयं बैठे । पत्नी एवं बच्चोंको वहीं मुसाफिरखानेमें छोड़ा । रात्रिके नौ बजे सीपरी बाजारमें उसे पकड़नेमें हम समर्थ हो सके । श्रीचौधरीजीने उसको डाँटकर कहा कि 'सब चीजें रख दो ।' वह हक्का-बक्का-भौंचक्का होकर चौधरीजीकी ओर देखने लगा और कहने लगा कि 'ये (मैं) मेरे ताँगेमें नहीं आये थे ।' श्रीचौधरीजीने मुझसे उसे पहिचाननेके लिये कहा । मैंने

उसे तुरंत पहिचान लिया और कहा—'यही है।' इसके पश्चात् चौधरीजी उसे थानेमें ले गये। कुछ ही दूर चलनेके पश्चात् वह विचलित हो गया और उसने कह दिया कि 'मेरा साथी, जो इसी तॉंगेमें बैठा था, उसीके पास सब चीजें हैं, वह सैंयर गेटके पास रहता है।' निदान हमलोग थानेमें न जाकर सैंयर गेट आये। वहाँ पहुँचकर उसकी खोज की; परंतु उसके माँ-बापने उसे घरमें छिपा दिया था। अतएव उसे निकलवानेके लिये हमने उसी मुहल्लेके एक प्रभावशाली नगरपालिका-सदस्य (नाम स्मरण नहीं रहा) की सहायता प्राप्त की और उसे पकड़नेमें सफल हुए। वह बिना किसी ननु-नचके घर गया और मेरे समस्त गहने लाकर मुझे दे दिये। मैंने सूचीके अनुसार उन्हें सँभाल लिया। इस खोजमें हमलोगोंको बारह बज गये थे। उधर मेरी पत्नी इस असह्य विलम्बके कारण बड़ी चिन्तित थी। वह बड़ी आर्तताके साथ निम्न चौपाइयोंका पाठ मेरे आनेतक करती रही—

गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥

स्वनामधन्य श्रीलक्ष्मीनारायणजी चौधरीने शारीरिक अक्षमताके बावजूद भी जिस ईमानदारी एवं तत्परताके साथ हमारे आभूषणोंका पता लगवानेमें सहायता तथा सहयोग दिया, वह चिरस्मरणीय है; उनके इस मानवोचित कार्यके प्रति आज भी मेरा मस्तक झुक जाता है। मैंने इस कार्यके लिये उनकी कृतज्ञता प्रकट की तथा ऐसी स्वस्थ परम्पराओंको डालनेकी सराहना की। आज भी ऐसे निःस्वार्थ परोपकारी प्राणी इस वसुधापर विद्यमान हैं।

—रामभरोसे गुप्त 'राकेश'

*

श्रीयमुनाजल और उसका विचित्र प्रभाव

सन् १९४५ में मैं टीकमगढ़के पं० वामदेव तैलंगकी 'कलाकुटीर'में ठहरा हुआ था। अस्वस्थ था। मुझे दिन-रातमें लगभग १००-१२५ बार लघुशंका करनी पड़ती थी और मैं प्रायः प्यासका अनुभव किया करता था। मेरे हाथ-पैर तथा सिरमें जलन रहती थी। भूख कम हो रही थी। शरीरमें थकावट, शिथिलता और पीड़ा बनी रहती थी और कभी-कभी पेशाबके साथ आगे या पीछे वीर्यकण आ जाते थे, जिससे मेरी मानसिक शान्ति भंग हो गयी थी तथा मैं प्रायः चिन्तित-सा बना रहता था। पण्डित वामदेवजीकी सम्मतिके अनुसार मैंने पहले डाक्टरोंसे इलाज कराया और फिर पण्डित रामदेव शास्त्री राजवैद्य टीकमगढ़से ओषधियाँ लेता रहा, किंतु अपेक्षित लाभ न हो सका। साथ ही व्याधिके नित्य नवीन रूप भयंकर रीतिसे प्रकट होने लगे।

इन्हीं दिनों अट्टा चौबे मथुरावासीके साथ एक बंगाली वैष्णव श्रीकृष्णानन्दजी वहाँ अचानक आ गये और पण्डित वामदेवजीके ही घर ठहर गये, जहाँ कि मैं ठहरा था। एक दिन मौका पाकर मैंने उक्त वैष्णव महोदयसे अपनी व्याधिकी बात बतायी और उसके शमनका उपाय पूछा। तब उन्होंने कहा कि आप 'श्रीयमुना-जल'का नित्य पान और 'ॐ क्लीं कृष्णाय नमः' मन्त्रका जप अहर्निश किया कीजिये। इससे आपकी व्याधि दूर हो जायगी। तदनन्तर मैंने सिर्फ चार मास उक्त प्रयोग किया और उसके फलस्वरूप मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया। एवं अबतक मुझे उपर्युक्त ढंगकी किसी व्याधिका अनुभव नहीं हुआ है। उक्त महात्मा लगभग

एक सप्ताह टीकमगढ़में रुके थे। मैंने चलते समय उनसे श्रीयमुनाजल-के अन्य प्रभाव पूछे, तब उन्होंने बताया—

१. 'कुष्ठ रोगवाले व्यक्तिको वे नित्य श्रीयमुनाजलका पान कराते हैं और दिनके प्रातः ६ से ९ बजेतक सूर्य-किरण स्नान कराते हैं। साथ ही तुलसीदल-मिश्रित धारोष्ण गोदुग्ध-सेवन कराते हैं। इससे लगभग दो सालमें कुष्ठव्याधि समूल नष्ट हो जाती है। यह अनुभूत प्रयोग है।

२. 'चित्तभ्रम'में यदि तीन मास प्रतिदिन तुलसीदलमिश्रित श्रीयमुनाजल दिया जाय तो रोग नष्ट हो जाता है। ऐसा बहुतोंका अनुभव है।

३. 'गर्भपात' होनेवाली स्त्रीको यदि एक वर्षतक नित्य श्रीयमुना-स्नान तथा यमुनाजल पान कराया जाय और यमुनाजलके साथ एक आँवलेका चूर्ण प्रतिदिन खिलाया जाय तो 'गर्भपात' होना बंद हो जाता है।

४. 'कम्पवायु'में यदि श्रीयमुनाजलके साथ १० काली मिर्च और १० तुलसीदल नित्य सायं-प्रातः तीन मासतक खिलाया जाय, तो पुष्टता तथा नीरोगता आ जाती है।

५. 'प्रदर' रोगवाली स्त्रीको यदि नित्य यमुनाजलके साथ छः महीनेतक एक आँवलेका चूर्ण काले नमकके योगमें खिलाया जाय और दिनके प्रथम प्रहरमें सूर्यकिरण-स्नान नित्य कराया जाय तो व्याधि दूर हो जाती है।

६. 'धातुक्षीणता' वाले व्यक्तिको यदि तुलसीबीजोंके साथ

नित्य ही श्रीयमुनाजल पिलाया जाय और ६ से ८ तक प्रातः सूर्यकिरण-स्नान कराया जाय तो धातुपुष्टता हो जाती है और शरीर बलशाली बन जाता है।

७. 'निरसंतान' स्त्रीको तीन वर्षतक यदि तुलसीदलमिश्रित श्रीयमुनाजलका ही रात-दिन सेवन कराया जाय और 'ॐ क्लीं कृष्णाय नमः' मन्त्रका तीन बार चार लक्ष जप कराया जाय तो उसको संतान प्राप्त हो जाती है। ऐसा कई लोगोंका अनुभव है।

८. 'मृतवत्सा' योगवाली स्त्रियोंको यदि तीन वर्षतक तुलसी-दलमिश्रित श्रीयमुनाजल पान कराया जाय, साथ ही 'श्रीकृष्णः शरणं मम' मन्त्रका तीन बार चार लक्ष जप कराया जाय तो उक्त दोष दूर हो जाता है और संतति चिरजीविनी होने लगती है।

९. 'शिरःशूल'में सायं-प्रातः और मध्याह्नमें श्रीयमुनाजलके साथ आँवलेकी पत्तियोंको पीसकर नाक-कानके छिद्रोंके द्वारा उक्त द्रव अंदर पहुँचाया जाता है और इससे एक सप्ताहमें बहुतोंकी व्याधि दूर होती देखी गयी है।

१०. 'प्रेतावेश'की स्थितिमें यदि श्रीयमुनाजलके साथ तुलसी-दल दिया जाय तो तीन-चार दिनमें मुक्ति मिल जाती है—ऐसा अनुभव किया गया है।

पाठकगण आवश्यक हो तो इन प्रयोगोंको करके देख सकते हैं। इनमें हानि तो होती ही नहीं।

—आचार्य पीताम्बर राव तैलंग 'देव'

भगवान्का मङ्गल-विधान

कई वर्ष पहलेकी बात है। बम्बईमें चाँदीके व्यापारी दो भाइयोंमें बातचीत हो रही है—

रमणलाल—सुना है, पानाचंद भाईके बड़ा घाटा लगा है और उनका भुगतान नहीं हो पा रहा है।

चन्दूलाल—हाँ, बात सच है। पानाचंद कितना अच्छा, समझदार, ईमानदार तथा प्रतिष्ठित था; पर जबसे उसके लड़केकी मृत्यु हुई, उसका दिमाग खराब हो गया। नहीं तो, क्या उसे कभी घाटा लगता ! पर छोटाभाई ! इस समय हमारा कर्तव्य क्या है ! आपको याद ही है। गतवर्ष पानाचंद हमको चाँदी बेच गया था, पर पता नहीं उसे कैसे याद नहीं रही। न उसका आदमी सही कराने आया, न फिर कोई बात ही हुई। बाजार मंदा हो गया। हमलोगोंने तो उसी दिन कुछ नफेसे चाँदी बेच दी थी और उसमें लगभग बावन-तिरपन हजार रुपये पानाचंदके हमारे यहाँ जमा रहे थे। मैंने आपसे कहा भी था कि 'वह भूल गया तो क्या हुआ, हमें तो याद है। याद ही क्यों है, हमने तो उसके बदले उसी समय बदलेमें बेच भी दी थी। उसके पैसे उसको मिलने ही चाहिये। उसकी दिमाग-खराबीका अनुचित लाभ हम क्यों उठायें !' पर आपने कहा था, 'वह चेतेगा, तब देख लेंगे। नहीं तो, जब उसे जरूरत होगी; दे देंगे। वह दिमागखराबीमें कहीं खो देगा।' पर आज तो उसका फर्म ही बिगड़ रहा है। इस समय उसको बचाना हमारा धर्म है। फिर यह तो उसीका पैसा है। सुना है, उसको चालीस हजार लगभगकी ही भुगतानमें कमी पड़ रही है।

चन्दूलालकी बात सुनकर रमणलाल भाईका मन उदास तो हो गया, पर छोटे भाईके सामने वह ईमानदार ही बना रहना चाहता था। इससे उसने कहा—'भैया! ठीक है। तुम जाओ, उसे रुपये दे आओ, पर भेद मत खोलो। यही कहो कि आपकी बुरी हालतमें मदद करने आये हैं। इससे वह कृतज्ञ होगा और उसका काम भी हो जायगा।'

पर बड़े भाईकी यह बात चन्दूलालको नहीं जँची। उसने कहा—'दूसरेका धन उसीको सहायताके रूपमें देकर नया पाप क्यों मोल लेना चाहिये? भाई साहेब! आप सोचिये और उसकी चीजपर उसीका हक मानकर, स्पष्ट बताकर तथा ब्याजसमेत उसे देकर इस पापके कीचड़से जल्दी निकल जाइये। इस समय अपना यह कलङ्क धो ही लेना चाहिये।'

रमणलाल आखिर मान गये। दोनों भाई रुपये लेकर सेठ पानाचंदके घर पहुँचे। वे कमरेके अन्दर बैठे रो रहे थे। दिमाग तो ठीक था, पर दुःखका पार नहीं था। इन लोगोंने पहुँचकर उन्हें ढाढ़स बँधाया और चाँदीके सौदेकी बात याद दिलाकर पूछी। उन्हें कुछ भी याद नहीं था। पर इन लोगोंने याद दिलानेकी चेष्टा की, आखिर उनको याद न आनेपर भी ये बड़ी नम्रतासे उन्हें रुपये दे आये। उनका भुगतान हो गया। उनको, उनके सारे परिवारके लोगोंको कितना हर्ष हुआ और उन सबने दोनों भाइयोंको कितने और कैसे-कैसे आशीर्वाद दिये—— इसका कुछ अनुमान ही किया जा सकता है।

पानाचंद भाईको भुगतान हो जानेके बाद चाँदीके सौदेकी बात भी याद आ गयी। उन्होंने उन दोनों भाइयोंसे मिलकर कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे कहा—'भगवान्‌ने मुझको सौदेकी बात भुलाकर और उस समय आपके द्वारा मुझे रुपये न देनेकी प्रेरणा कर मेरा कितना भारी उपकार तथा मङ्गल किया। उस समय रुपये मेरे हाथमें आ जाते और मैं उड़ा देता तो आज मेरे फर्मकी इज्जत बचानेके लिये इतने रुपये कहाँसे आते ? मैं आप सबका तो कृतज्ञ हूँ ही, पर सर्व-उरप्रेरक भगवान्‌के कृपापूर्ण मङ्गल-विधानका भी आज प्रत्यक्ष पता लग गया।

—साकरचंद

तुलसीकी महिमा

विजयनगर अजमेरसे पाँचवाँ रेलवे स्टेशन है। इस विजयनगरमें पं० श्रीलालजी 'श्रीकालिका देवी' मन्दिरके पुजारी हैं। इनकी मामीजीका स्वर्गवास हुआ तो उनके दाह-संस्कारमें इनके एक जयपुरनिवासी मेहमानने बातों-ही-बातोंमें अभी कुछ दिनों पहलेकी एक प्रत्यक्ष आश्चर्यजनक घटना सुनायी। उन्होंने बताया कि हमारे यहाँ एक सिरस्तेदार (सरकारी मुलाजिम) जातिके मुसल्मान हैं। उनके घर एक नाई बाल बनाने आता था। वह नाई संसारसे चल बसा, किंतु सालभर बाद सिरस्तेदार साहबको वह नाई दिखायी दिया। तब उन्होंने उससे पूछा—'तुम तो चल बसे थे जी ?' उस मृतक प्राणीने कहा कि 'हाँ, मैं मर गया था। पर

मरनेके बाद मुझे यमदूतका काम मिल गया। मैं अब यमदूतके रूपमें संसारमें फिरता हूँ। किंतु आप मेरे पूरे मेहरबान हैं, इसलिये आपसे पुनः मिलने आ गया। कल आपके गाँवके बाहर माताजीके स्थानपर एक बालकको बैल सींगसे मारेगा। उसकी मृत्यु हो जायगी। तब मैं उसे ले जाऊँगा।' इतना कहकर वह अदृश्य हो गया। फिर इस बातकी जाँचके लिये सिरस्तेदार साहबने एक दिनकी छुट्टी ले ली और दूसरे दिन जलका लोटा लेकर निपटनेके बहाने वे गाँवके बाहर जा निकले। जहाँ भगवतीका स्थान था, वहाँपर बाहरसे कुछ यात्री आये हुए थे। एक बालकका मुण्डन-संस्कार किया। फिर स्नान कराकर कपड़े पहनाकर उस पञ्चवर्षीय बालकको गेंद खेलनेके लिये दिया। खेलते समय बैलगाड़ीके पास वह गेंद चली गयी। बच्चा उसे लेने गया, तब बैलने सींगसे उसे उठाकर पाँच-सात फुट दूर फेंक दिया। गिरते ही बच्चेका प्राणान्त हो गया। कोलाहल मच गया। रोना-पीटना शुरू हो गया। सिरस्तेदार साहब यह सब देखकर वहाँसे रवाना हो गये। रास्तेमें वह नाई मिला। उसने कहा—'साहब! मुझे निराश लौटना पड़ रहा है। कारण कि जिस जगह वह बालक गिरा, उस जगह 'तुलसी'-पत्र थे, उनके स्पर्शसे विष्णुदूत आ गये और उस आत्माको मुझसे छुड़ाकर ले गये।' इतना कहकर वह नाई अदृश्य हो गया। इसके बाद उन मुसलमान सिरस्तेदार साहबने तुलसीका महत्त्व समझकर अपने घरपर तुलसीका पौधा लगाया। फिर वे एक वर्ष जीवित रहे। अब आजके पाँच दिन पहले वे भी परमेश्वरके द्वार पहुँच गये। आज विजयनगर आया तो मुझे श्मशान देखना पड़ा।

—गणपतिलाल त्रिपाठी

किराया पीछेसे भेजा

यह सच्ची घटना गत मईकी है ।

जिस संगीकी चर्चा कर रहा हूँ, वह श्रीमदनविहारी, एडवोकेट, मोतिहारीका पुत्र श्रीविजयविहारी है, जो अभी लंदन युनिवर्सिटीमें उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहा है । विगत मईमें अपने बड़े भाई श्रीविनयविहारीके यहाँसे उनकी लड़की सुश्री चिन्मयीकुमारीको लिये भागलपुरसे मोतिहारी वापस आ रहा था ।

भागलपुरमें बरौनी गाड़ीमें बड़ी भीड़ थी । तृतीय श्रेणीमें कहीं भी जगह न मिलनेके कारण उसने टी० टी० ई० को खबर देकर द्वितीय श्रेणीमें बरौनीतक यात्रा की । रास्तेमें टी० टी० ई० से कहीं भी भेंट न हो सकी ।

यों तो आजके वातावरणके लिये विद्यार्थीमात्रको बदनाम किया जा रहा है, पर सभी विद्यार्थी एक-से नहीं होते । हमारे संगी विद्यार्थी भाइयों और अन्य लोगोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि भाई विजयने घर लौटनेपर अतिरिक्त किराया जेनरल मैनेजरको भेजा तथा टिकट न ले सकनेका विवरण लिखा ।

जब अतिरिक्त किरायेकी रकम जेनरल मैनेजरको मिली, तब उन्होंने अपने पत्र-संख्या A. G. 400/10–दिनाङ्क २५ मई १९५९ में लिखा—

"......This Administration, appreciates the noble spirit prompting such actiou on your part and hopes that this example will be followed by our countrymen." (आपने जिस नम्र भावनासे ऐसा किया, उसकी यह शासन सराहना करता है और आशा करता है कि हमारे देशवासी इसका अनुकरण करेंगे ।)–ठाकुर महेन्द्रनाथ सिन्हा, वकील

हृदय-परिवर्तन

एक रविवारको मैं अपने एक व्यापारी मित्रसे मिलने गया था। उनका नाम था रमणलाल। उन्होंने अपनी पत्नीसे चाय तैयार करनेको कहा और हमलोग उनके दीवानखानेमें जाकर बैठ गये। बातचीतमें रमणलाल सेठ उनका १२५०) रुपयेका बटुआ कैसे खो गया और उसे ढूँढ़ निकालनेके लिये कैसे प्रयत्न किये—यह सब बता रहे थे कि इतनेमें एक अपरिचित मास्टर उनसे मिलने आये। रमणलाल सेठने उनको सत्कारपूर्वक बैठाया और हमलोगोंमें बातचीत शुरू हुई।

मास्टर साहेबने जेबमेंसे बटुआ निकालकर सेठके हाथमें रखते हुए कहा—'सेठजी! यह आपका बटुआ, अंदरके रुपये और रसीदोंको अच्छी तरह सँभाल लीजिये।' बटुआ मिलते ही सेठ चकित हो गये और आनन्दमें भरकर बोले—'मास्टर साहेब! बटुआ ला देनेके लिये मैं आपका बड़ा ही ऋणी हूँ। मैंने इसको पानेके लिये कितनी खोज-बीन की; अखबारोंमें विज्ञप्ति छपवायी; आखिर न मिलनेपर यही मानकर बैठ गया कि मेरे नसीबमें नहीं है। परंतु आपने तो मेरी निराशाको सफल आशामें पलट दिया।'

मास्टर बीचमें ही बोल उठे—'सेठजी! यह आभार मेरा नहीं, हमारे गाँवमें कूड़ा उठानेवाले झाड़ूदारका मानना चाहिये। उसीने मुझको मानवताकी शिक्षा दी।'

मास्टरकी बात मेरी समझमें नहीं आयी, इससे मैंने उनसे पूछा—'मास्टर साहेब ! बटुआ आपको मिला, आपने लाकर दिया; फिर आप यशका अधिकारी झाड़ूदारको कैसे बना रहे हैं ?' मास्टर साहबने कहा—'शंकर भाई ! यही बात तो मैं विस्तारसे बता रहा हूँ ।'

जिस दिन रमणलाल सेठका बटुआ खोया, उस दिन मैं पोरबंदरकी बसमें रमणलाल सेठके बगलमें ही बैठा था। रमणलाल सेठ बससे उतरे, उस समय उनकी सीटपर यह बटुआ पड़ा था । मैंने अवसरसे लाभ उठाया और बटुआ उठाकर जेबमें डाल लिया । यद्यपि मेरी आत्मा अंदरसे अस्वीकारकी आवाज लगा रही थी; पर मेरे लोभी मनने उसकी बात नहीं सुनी । घर जाकर बटुआ खोला । अंदर १२५०) रुपयेके नोट तथा दो रसीदें देखकर मैं आश्चर्यमें रह गया । मेरे लोभी मनके सामने आत्माकी आवाज दब गयी और मैंने बटुआ रख लिया ।

फिर एक घटना हुई, अभी परसों मेरा पाँच रुपयेका नोट खो गया । मैंने बहुत खोज-तलाश की; परंतु कहीं नहीं मिला । आखिर निराश होकर मैं पाठशालाके मैदानमें बैठा अखबार पढ़ने लगा । इतनेमें कूड़ा उठानेवाला मैदान साफ करनेके लिये आया और मुझे देखकर सलाम करके बोला—'साहेब ! यह पाँच रुपयेका नोट मुझे यहाँ मिला है, यह आपका है ?' मैंने आनन्दमें भरकर कहा—'मेरा ही है और नोट उससे ले लिया । परंतु उसके हटते ही मैं अपने साथ उसकी तुलना करने लगा । मेरी आत्मासे

आवाज निकली—'कहाँ एक अज्ञान और असंस्कारी झाड़ूवाला और कहाँ मैं शिक्षित और संस्कारी शिक्षक। धिक्कार है।' बस, उसी क्षण मेरी दुर्बुद्धि दूर हो गयी। मुझे रातभर नींद नहीं आयी। आखिर दृढ़ निश्चय करके अखबारमें छपी सूचनाके अनुसार आपका पता लगाकर यहाँ बटुआ देने आ गया।'

मेरे मुखसे स्वाभाविक ही उद्गार निकल पड़ा—'कैसा सुन्दर हृदय-परिवर्तन!' (अखण्ड आनन्द)

—शंकरलाल एम्० मेहता

उदार भिखारी

गणेश-चतुर्थीकी बात है। मैं बाजारमें श्रीविनायकजी (गणेशजी) की मूर्ति और कुछ सामान खरीदने गया था। मैंने पहले सामान खरीदा। पीछे मूर्तियोंकी दूकानोंपर मूर्ति पसंद करनेके लिये घूमने लगा। एकाएक मेरा ध्यान एक लड़केकी ओर गया, वह लगभग १०-१२ वर्षका होगा। उसके एक हाथमें गणेशजीकी मूर्ति और एक सुन्दर माला थी। दूसरा हाथ उसकी जेबमें था। वह एक भिखारीके पास खड़ा था, शायद उसे कुछ देना चाहता था। यह भिखारी वही दुबला-पतला हड्डीका ढाँचा था, जिसका हाथ कुछ ही देर पहले मेरे पैरसे कुचला गया था और जिसको मैंने फटकारा भी था।

वह लड़का अपनी जेबमें पैसा ढूँढ़ रहा था। मैं दूरसे उसकी ओर ध्यानसे देख रहा था। अचानक उसके हाथसे वह गणेशजीकी मूर्ति गिर पड़ी। मूर्तिका सिर अलग हो गया और कोमल पुष्पमाला टूटकर बिखर गयी। लड़का रोने लगा। उसका रुदन सुनकर बगलके एक भिखारीने उस भिखारीको, जिसको वह बालक पैसा देना चाहता था असली परिस्थितिका परिचय कराया।

उस अन्धे भिखारीने तुरंत उस बालकको अपने पास खींचते हुए कहा—'बेटा! रो मत। जा दूसरी मूर्ति खरीद ला। ले यह पैसे।' यों कहकर उसने अपने सामनेके कुछ पैसे बटोरकर उस बालकको दे दिये और अपने दुबले हाथसे उसकी पीठ सहलाते हुए उसके आँसू पोंछे और जाने कुछ कहा। बालक उस भिक्षुककी ओर कृतज्ञतासे देखता हुआ चला गया।

मैं यह सब देख रहा था। मुझे बड़ा पछतावा हो रहा था कि मैंने भिखारीके वेशमें बैठे उस महान् उदारात्माकी बड़ी उपेक्षा की है, पर 'अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गयी खेत।'

—कमलकिशोर मन्त्री

ईमानदार ड्राइवर

ड्राइवर श्रीसुधीरकुमार पाल एक यात्रीको छोड़कर जब वापस लौटा, तब उसने देखा कि उस यात्रीके आभूषणोंका बक्सा टैक्सीमें रह गया है। वह पुनः वापस गया और बक्सा उसके मालिकको दे आया। बक्सामें १५ हजार रुपयेके मूल्यके आभूषण थे।

ड्राइवर सुधीरकुमारने किसी प्रकारका पुरस्कार लेना अस्वीकार कर दिया।

—'नवभारत टाइम्स'

ईश्वरकी अदालतसे डरनेवाला

देशविभाजनसे पूर्वकी बात है। अमृतसरसे कुछ सज्जन लाहौर जानेके लिये स्टेशनपर पहुँचे और एक युवकसे टिकट लानेके लिये कहा। वह युवक गलतीसे एक टिकट कम ले आया; परंतु इस भूलका भेद खुला लाहौर पहुँचकर स्टेशनसे बाहर निकलनेके समय। वे लोग भीड़में बाहर तो निकल गये; परंतु उनमें एक वयोवृद्ध प्रभुको भजनेवाले सज्जन थे। उन्होंने कहा—'बड़ा अपराध हो गया। हम इस दुनियाकी अदालतमें तो नहीं पकड़े गये, परंतु सर्वदर्शी प्रभुकी अदालतमें कभी नहीं छूट सकते।'

बहुत सोच-विचारके पश्चात् उक्त सज्जनने मस्तिष्क हिलाकर एक युवकसे कहा—'यह लो पैसे, अमृतसर जानेका एक टिकट खरीद लाओ।' साथवाले सब आश्चर्यमें पड़ गये। पूछने लगे—'क्या आप वापस अमृतसर जाना चाहते हैं?' उन्होंने कहा—'देखो तो सही।'

जब वह युवक टिकट लेकर आया, तब इन महान् व्यक्तिने उसके हाथसे टिकट लेकर उसे फाड़ डाला और कहा कि 'अब सरकारी कोषमें पैसे चले गये हैं। शायद प्रभु हमपर दया करके अपराध क्षमा कर दें। इसके सिवा और कोई चारा नहीं था।'

सब लोग देखते रह गये। ऐसे ही लोग धर्म तथा ईमानको जीवित रक्खे हुए हैं। बात छोटी-सी है, पर नीयतकी दृष्टिसे बहुत बड़ी। अपराधका क्या छोटा, क्या बड़ा। छोटा अपराध करनेवाला ही बड़ा अपराध करता है। धन्य! —योगेन्द्रराज भण्डारी बी० ए०

अपकारके बदले उपकार

कुछ समय पहले हम 'सोनगढ़, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज' के विद्यार्थी उत्तरभारतमें घूमने गये थे और आगरा-देहरादून एक्सप्रेससे बड़ोदा लौट रहे थे।

हमलोग गोधरातक आ पहुँचे थे। बड़ोदा अब बहुत समीप था। गाड़ीमें बड़ी भीड़ थी। इस बीच पाजामा और लंबा कुर्ता पहने

तथा हाथमें एक चमड़ेकी बेग लिये एक सज्जन हमारे डिब्बेमें कम भीड़ देखकर चढ़नेका प्रयत्न करने लगे, परंतु हमलोग बड़े जोरसे हो-हल्ला मचाकर उन्हें निकालने लगे। गाड़ी छूटनेकी तैयारी थी। उन सज्जनने कहा—'मेहरबानी करके मुझे चढ़ जाने दीजिये, मैं सिर्फ खड़ा ही रहूँगा। आपलोगोंको जरा भी तकलीफ हो ऐसा कुछ भी नहीं करूँगा।' परंतु हमलोग बड़े जोरोंसे उनका अपमान करने लगे। इतना होनेपर भी वे भाई जरा भी विनय खोये बिना शान्तिसे बोले—'मैं अगले स्टेशनपर दूसरे डिब्बेमें चला जाऊँगा।' गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी थी। वे भाई खिड़कीपर लटक रहे थे। हम अहंकारमें चूर थे। अन्तमें अगले स्टेशनपर डिब्बा बदलनेकी बात कहकर हम लोगोंने उन्हें चढ़ने दिया, मानो उनपर बड़ा उपकार कर रहे हों।

बात यह हुई कि हमारी मण्डलीके एक भाईने थर्मससे पानी पीया था। थर्मस टूट गया था, इसका उन्हें पता नहीं था, इससे काँचके महीन-महीन कुछ टुकड़े उनके पेटमें चले गये थे। उनकी हालत नाजुक जान पड़ती थी। वे भाई एक तरफ सो रहे थे। और हमलोग उनकी सार- सँभालमें लगे थे। उनके पेटमें बड़ा दर्द था। इतनेमें वे सज्जन जिनको हमने डिब्बेमें चढ़नेसे बुरी तरह रोका था, पास आ गये। उन्होंने रोगीको देखा और फिर कहा—'आपको आपत्ति न हो तो मैं इन भाईको कुछ दवा दूँ।' हमने स्वीकार किया। उन्होंने रोगीके एक इंजेक्शन लगाया और दो गोलियाँ दीं।

तथा तत्काल ही उनके पेटका दर्द बंद हो गया। मैंने दस रुपयेका नोट निकालकर हाथ बढ़ाया और कहा—'लीजिये, यह आपकी दवाके दाम, जितने हों उतने ले लीजिये।' परंतु पैसे न लेते हुए उन्होंने कहा—'मैं डाक्टरका काम करता हूँ। जब कोई मनुष्य कष्टमें हो, तब उसकी यथासाध्य सहायता करना मैं अपना धर्म समझता हूँ। मैंने सिर्फ अपने धर्मका पालन किया है, विशेष कुछ नहीं किया है।' हमने बड़ी कोशिश की, परंतु उन्होंने पैसे नहीं लिये। गोधरा स्टेशनका बना हुआ प्रसंग अब हमारी आँखोंके सामने आ गया। कहाँ हम भावी पीढ़ीके निर्माता अनिर्मित युवक और कहाँ ये शान्त सज्जन परोपकारी डाक्टर! हमारी ऐसी दशा हो गयी कि काटो तो खून न निकले। लज्जासे हमारा सिर नीचा हो गया। हमने सच्चे हृदयसे उनसे क्षमा माँगी। अगले स्टेशनपर उन्होंने उतरकर दूसरे डिब्बेमें जाना चाहा, परंतु हमलोगोंने उनको बड़ोदा-तक अपने डिब्बेमें ही रक्खा। आखिर बड़ोदा स्टेशन आ गया। उन्होंने हमें अपना टेलीफोन नंबर बताकर कहा—'यदि इन भाईको कोई तकलीफ मालूम दे तो मुझे बुला लीजियेगा।' और हम इन परोपकारी डाक्टरको दूर-दूर जाते हुए मूढ़की तरह देखते ही रह गये। आज भी अपकारका बदला उपकारके द्वारा चुकानेवाले इन डाक्टरका प्रसंग हमारी आँखोंके सामनेसे नहीं हट रहा है। (अखण्ड आनन्द)

—गणेश मांगुकिया

श्रीहनूमान्‌जीकी कृपा

गत १५ मार्चकी बात है। मैं सूती कपड़ा खरीदने मुलतानपुर जा रहा था। मुझे १५००) रुपयोंकी जरूरत थी। जिसमें मेरे पास ८००) थे। ३००) मैंने अपने पड़ोसीसे लिये। अभी ४००) घट रहे थे। १५००) के बिना काम नहीं चल रहा था। मैं बहुत परेशान था। इतनेमें मेरी नजर श्रीहनुमान्‌जी महाराजके चित्रकी ओर गयी। मैंने मन-ही-मन श्रीहनुमान्‌जीसे कातर प्रार्थना की। आश्चर्यकी बात कि कुछ ही समय बाद शामको चार बजे अकस्मात् एक सज्जन आये और उन्होंने ४००) रुपये गिन दिये। उनमें हमारे रुपये लेने थे। मैं आश्चर्यचकित होकर श्रीहनुमान्‌जीका परम विश्वासी बन गया।

—बाबूराम गुप्त

ऋणमुक्तिका प्रयास

बूतेसे बाहर घाटा हो गया था हमारे यहाँके····महाशयको। उन्होंने सट्टा नहीं खेला था। माल खरीदा था, पर अकस्मात् इतनी मंदी आ गयी कि जिसकी कोई सम्भावना नहीं थी। बाजार पानीकी तरह उतरता गया। बहुत पुराने-पुराने फर्म फेल हो गये। ये बड़े चिन्ताग्रस्त थे। इनके एक पुराने स्कूली मित्र थे······। बीचमें किसी कारण उनसे कुछ मनमुटाव हो गया था। व्यापारियोंमें ऐसा हो जाया करता है। उन्होंने सुना कि····को बैंकके रुपये देने हैं और बैंकवाले·······उनके गोदामोंको कुर्क करके

कानूनी कार्रवाई करने जा रहे हैं। उनसे नहीं रहा गया। उन्होंने उसी समय चौवालीस हजार नकद रुपये देकर एक नये विश्वासी आदमीको बैंकमें भेजा और·······के खातेमें रुपये जमा करा दिये तथा बैंक-मैनेजरसे कहा कि 'रुपये जमा हो गये हैं। आप कानूनी कार्रवाई तुरंत बंद कर दीजिये।' मैनेजरने तुरंत क्लर्क दौड़ाया। गोदामोंपर कुर्की पहुँची ही थी कि क्लर्कने जाकर कहा—'रुपये आ गये, सारी कार्रवाई बंद कर दी जाय।'·······ने जब सुना तो वे आश्चर्यमें डूब गये। रुपये कहाँसे जमा हो गये? लोगोंने कहा—'भगवान्‌ने भेजे होंगे, आप भगवान्‌के विश्वासी भक्त हैं। सफलतामें सभी प्रशंसा किया करते हैं। पर बात उनकी समझमें नहीं आयी। लगभग दो महीने बाद मित्रके द्वारा बैंकमें भेजे हुए उस आदमीने किसीको यह घटना बतलायी, तब उसके द्वारा·······को पता लगा। सचमुच रुपये तो भगवान्‌की प्रेरणासे ही आये थे। परंतु उन मित्रका विशाल हृदय देखकर·······इनका जीवन तो उसके चरणोंमें ही लुट पड़ा। ये उसके यहाँ पहुँचे। उसे पता भी नहीं था कि इनको मालूम हो गया है। आखिर बात खुली। मित्रने बताया—'भाई! मैंने कुछ नहीं किया। केवल बदला मात्र चुकानेकी चेष्टा की है। हमलोग स्कूलमें साथ पढ़ते थे। एक दिन मुझसे अपने साथी अमुक विद्यार्थीकी सोनेकी अँगूठी खो गयी थी। मैंने खेल-ही-खेलमें उसकी अँगुलीसे निकालकर अपनी अँगुलीमें डाल ली थी। वह कहीं गिर पड़ी थी। उसके घरवालोंने उसे डाँटा; तब तुमने ढाई सौ रुपये देकर वैसी ही दूसरी अँगूठी खरीदकर दी थी और

मेरी इज्जत बचायी थी। तुम भूल गये, परंतु मुझे वह तुम्हारा उपकार सदा याद रहता। कभी मौका ही नहीं आया कि वह ऋण उतरे। तुम्हें ढाई सौ रुपये लौटाकर तो मैं ऋणमुक्त हो ही नहीं सकता था। इसीसे उस दिन भगवत्प्रेरणासे मैंने यह कार्य किया। मैंने घरमें भी किसीसे नहीं कहा था। मैं चाहता था, तुम्हें कभी पता ही न लगे। परंतु उक्त सज्जनके पेटमें बात पची नहीं, इसीसे मेरा यह मनोरथ भंग हो गया। यह वास्तवमें मेरे लिये बड़ी ही लज्जाकी बात हुई, जो तुम्हें उपकार मानने मेरे पास आना पड़ा। तुम्हारे उस उपकारका तो बदला मैं चुका ही नहीं सकूँगा। यह तो मेरा एक आत्मसंतोषके लिये साधारण प्रयास था।' धन्य!

—हरगोविन्द गर्ग

जैसी ईश्वरकी इच्छा

कुछ समय पूर्व कानपुरमें एक अत्यन्त करुण घटना हो गयी। एक विधवा माताके इकलौते पुत्रको कुछ ही क्षणोंमें कालने हड़प लिया। आध घंटे पहले जिस घरमें आनन्द उमड़ रहा था, वहाँ शोककी गहरी घटा छा गयी। माताको बड़ी खुशी थी। दूसरे दिन तो बहू आनेवाली थी। पुत्रके भी उमंगका पार नहीं था। दुपहरको पुत्र बाहरसे घर लौटा। माताने बड़े उल्लाससे रसोई बनायी। भोजन परोसा। इतनेमें लड़केने कहा—'अभी दस मिनटमें आता हूँ—मेरे मित्रसे मिल आऊँ।' माताने बहुत समझाया—'परोसी थाली छोड़कर नहीं जाया जाता, यह अपशकुन माना जाता है।'

पर भावीकी बात—लड़का न माना, न माना। घरसे निकलनेके पाँच ही मिनट बाद वह रास्ता लाँघ रहा था कि एक ट्रकके झपेटेमें आ गया और बस वहीं उसके राम रम गये।

ट्रक चलानेवाला सिख था, तुरंत दौड़कर घर गया। यों हाँफते-हाँफते अते देखकर सिखकी माताने पूछा—'क्या बात है?' थोड़ी देरमें सारी बात समझमें आ गयी। सिखने माँसे खानेको माँगा। माताने एक ही उत्तर दिया—'जबतक उस लड़केके पास न जायँ तबतक तेरे और मेरे लिये अन्न-जल हराम है। सिख और उसकी माता दोनों मरनेवाले लड़केके घर पहुँचे। पत्थरका हृदय भी पिघल जाय उस घरका यह हाल था। सिखकी माताने रोते-रोते कहा—'बहिन! तेरे लालको मौतके घाट उतारनेवाला मेरा बेटा है। यह तेरे सामने है। इसे जो कुछ दण्ड देना हो, दे दे।'

मृतककी माताने इतना ही जवाब दिया—'बहिन! तेरा बेटा सो मेरा बेटा। अब एकके बदले इसके दो माँ हो गयीं। बाकी तो ईश्वरकी ऐसी ही इच्छा थी, तू या मैं क्या कर सकती हैं।' वहाँ इकट्ठे हुए लोग इस दृश्यको देखकर आश्चर्यमें डूब गये। और मृतककी आत्मा भी—अपनी जननीके इस दिव्य त्यागको देखकर अवश्य पुलकित हुई होगी। उस सिख ड्राइवरने इस दूसरी माँको जीवनभर सँभालनेका वचन दिया। (अखण्ड आनन्द)

—जेठालाल कानजी शाह

भली ननद-भाभी

आनन्दी अपने माता-पिताकी एकमात्र संतान थी। पिता जागीरदार थे। घर सम्पन्न था। एकमात्र संतान होनेके कारण आनन्दीका पालन-पोषण बड़े ही लाड़-चावसे हुआ था। उसके माता-पिता सदा उसके मुखकी ओर ही देखा करते और बिना विलम्ब उसकी प्रत्येक इच्छाकी पूर्ति होती। माता-पिता सद्गृहस्थ थे। अच्छे घरानेके थे। घरमें रोज कथा होती। अतः कन्याको वे शिक्षित तथा सद्गुणवती बनानेकी भी सहज ही चेष्टा करते। फलतः आनन्दीमें शिक्षा तथा सद्गुणोंका समावेश हो गया। वे आनन्दीका विवाह किसी ऐसे सद्गुणसम्पन्न लड़केसे करना चाहते थे, जो अच्छे घरानेका हो और जिसके घरमें सब सदाचारी तथा भले लोग हों। बहुत खोजके बाद देहातमें एक लड़का मिला। लड़का पढ़ा-लिखा, सुन्दर, काम करनेवाला, बुद्धिमान् तथा प्रगतिशील था। घर भी अच्छा—सम्पन्न था। उसके एक बड़ी विवाहिता बहिन थी तथा माता-पिता थे। कारोबार करते थे अनाजका। खेती भी थी।

विवाह हो गया। आनन्दी ससुराल गयी। बड़ा आदर-सत्कार हुआ। सास-ससुरने अपनेको धन्य माना सुन्दरी सद्गुणवती बहू पाकर। पतिने भी बड़ा प्यार किया। ननद सुभद्रा बड़ी अच्छी थी, उसका हृदय प्रेमसे भरा था। पर इन दिनों वह कुछ गम्भीर थी। पता नहीं, किस चिन्तामें रहती। स्वभावसे ही कम बोलती। नयी भाभीका उसने स्नेहसे स्वागत तो किया; पर फिर वह अपनी चिन्तामें लग गयी। वह बहुत कम बोलती। अलग कमरेमें रहती

उसके चेहरेपर उदासी तथा बर्तावमें कुछ अनिच्छित-सी रुखाई थी।

आनन्दी ऐसे वातावरणमें पली थी कि इसने ननदके इस व्यवहारको अभिमान और अपना अपमान मान लिया। वह मन-ही-मन बहुत उदास रहने लगी। वह अपनी उदासी प्रकट नहीं करती, पर मन-ही-मन कुढ़ती। मनकी चीज बाहर आती ही है। वह मनकी उदासी कुछ-कुछ क्रोधके रूपमें बाहर आ गयी। वह समय-समयपर अकारण ही खीझने लगी। चतुर सासने उसे नैहर भिजवा दिया।

नैहरमें आकर उसने अपनी माँसे सब बतलाया। माँ बड़ी बुद्धिमती थी। उसने किसी बहाने एक बार सुभद्राको अपने यहाँ बुलाकर उसे सब बातें समझायीं। वह तो भली थी ही, इधर आनन्दी भी बहुत भली थी। गैरसमझ हो गयी थी। दुःख बढ़ा जा रहा था और अनर्थकी सीमातक पहुँच गया था। सुभद्रा सब समझ गयी! उसने भाभी आनन्दीके पास जाकर अपनी भूल स्वीकार की और उसको अपनी परिस्थिति बतलायी। उसने कहा—'भली भाभी! मेरा एकमात्र लड़का सुधीरकुमार शिक्षा पानेके लिये विदेश गया था। वह दो वर्ष वहाँ रहनेवाला था। उसे साढ़े चार वर्ष हो गये थे, जब तुम्हारा विवाह हुआ था। उसके कुछ ऐसे समाचार आये थे कि मैं किसीसे कह भी नहीं सकती थी और मेरा चित्त अत्यन्त अशान्त तथा चिन्ताग्रस्त रहता था। मुझे बार-बार झुँझलाहट आया करती। इसीसे मैं ससुरालसे माँके पास आ गयी थी। मेरे पति बाहर नौकरी करते हैं—मेरी

सास कुछ कड़े स्वभावकी हैं। मैंने सोचा—बात बता नहीं सकती और कभी झुँझला उठूँगी तो सास और नाराज हो जायँगी।

'जब तुम आयी थी, उस समय मेरी चिन्ताका मध्याह्न था। मैं बहुत मानस-व्यथामें थी। पर अपनी व्यथा छिपाये रखती, इसीसे अलग रहती और इसीसे तुमसे भी खुलकर कभी बात नहीं कर पायी। अब तुम्हारी माताने मुझको बुलाकर सब समझाया, तब मुझे अपनी भूलका पता लगा। तुम तो मेरी बेटीके समान हो। मुझे माफ करो। अब तो सुधीरका पत्र भी आ गया है। उसकी समस्या भी सुलझ गयी है। वह अगले महीने लौट आयेगा।' यों कहकर सुभद्रा रोने लगी।

भली आनन्दीकी भी आँखोंमें आँसू आ गये। उसने रोते हुए कहा—'बाईजी! मैं बहुत भूल समझ रही थी। मैंने मान लिया था कि आप अभिमानमें मत्त होकर मेरा तिरस्कार करती हैं। मैं घरमें आपको सुहाती नहीं। मैं कहीं मालकिन न बन जाऊँ, इसीसे आप मुझसे डाह करती हैं। न मालूम ऐसे कितने बुरे विचार आये। मैंने मन-ही-मन सोचा—मैं निर्दोष हूँ। ननदजीका आदर करती हूँ, पर ये अकारण ही मुझसे नाराज रहती तथा डाह करती हैं। मैं यदि इस बातको प्रकट करती हूँ तो मेरे पति—इनके भाई हैं—इनका बहुत आदर करते हैं और मेरी सास तो इनकी माता ही हैं—वे दोनों मुझपर नाराज हो जायँगे। आपके भाई मुझे उदास देखकर बहुत दुखी होते; समझाते, पर मेरे मनमें कोई बात बैठती ही नहीं। मैंने निश्चय कर लिया था कि इस जीवनसे मृत्यु अच्छी है। अब मैं आत्महत्या कर लूँगी।

मैंने अपने माता-पिताको भी कुछ नहीं लिखा। यह तो अच्छा हुआ कि सासजीने मुझे यहाँ भिजवा दिया। मैंने माँसे सब बात कह दी और माँने आपको यहाँ बुला लिया। अब आपकी बात सुनकर मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। मैं व्यर्थ ही आपपर गंदा संदेह कर बैठी। मुझे आप क्षमा करें। बड़ा अनर्थ होने जा रहा था। भगवान्‌ने रक्षा की।' यों कहकर आनन्दीने रोते हुए ननद सुभद्राके पैर पकड़ लिये। बुद्धिमती सुभद्रा तो स्वयं दुखी थी। उसने कहा—'नहीं भाभी! मेरा ही दोष है! तू तो बच्ची थी, बड़े लाड़-चावसे पली थी। मैंने ही यह बड़ी भूल की जो तुझसे रुखाईका बर्ताव किया। मनुष्यको यहाँ बहुत सावधान रहना चाहिये और घरमें नयी आयी बहूसे तो—जो माता-पिताको नैहरकी स्वच्छन्दता-स्वतन्त्रताको, भाई-बहनोंके प्यार-दुलारको, लड़कपनकी उछल-कूद तथा अल्हड़पनको तथा उन्मुक्त हँसीभरे जीवनको छोड़कर बिल्कुल नये घरमें अपनेको खपाने आयी है; उसके साथ तो विशेष सावधानीके साथ आदर-सत्कार, स्नेह-प्रेम और नितान्त आत्मीयता—मैत्रीका बर्ताव करना चाहिये। उसे खूब हँसाना तथा प्रसन्न रखना चाहिये, जिससे वह अपनेको अकेली अनुभव करके मन-ही-मन दुखी न हो। संकोचमें पड़कर आत्माको गिरावे नहीं। वह प्रफुल्लित रहे। उसके उत्साहका—साहसका विकास हो तथा सहम-संकोचका विनाश हो। वह सहज ही इस नये घरको अपना घर मानकर निस्संकोच उसकी सार-सँभालमें लग जाय और सबके साथ सहज ही हिल-मिलकर घरमें तुरंत खप जाय। घरमें सभी लोगोंको सास, जेठानियाँ, ननदें—

तथा ससुर, जेठ, देवर सभीको सावधानीके साथ निर्दोष स्नेह-दुलारका तथा मान-सम्मानयुक्त आत्मीयताका बर्ताव करना चाहिये। कदाचित् उसके रूप-गुणोंमें कमी हो तो भी उसकी जरा भी बात जबानपर नहीं लानी चाहिये। उसके माता-पिता आदिके सम्बन्धमें जरा भी नीच बात कभी भी नहीं कहनी चाहिये। पतिको तो विशेषरूपसे उसे प्यार देना चाहिये।

'नयी बहूको सास-ननदें अपने सद्व्यवहारसे साक्षात् लक्ष्मी बना सकती हैं और दुर्व्यवहारसे उसमें राक्षसीपनका उदय कर सकती हैं। बहिन आनन्दी! तुम तो आनन्दी ही हो, साक्षात् लक्ष्मी हो। मेरी भूल क्षमा करो।'

सुभद्राकी बातें सुन-सुनकर आनन्दीकी माँ रो रही थीं। आनन्दी तो आनन्दमग्न थी, साथ ही अपनी भूलपर सकुचा रही थी।

आनन्दीने कहा—'बाईजी! आप तो देवता हैं। आपने तो मेरे अंदरके देवत्वको जगा दिया है। अब मैं अपनी भूल समझ रही हूँ। क्या नयी बहूका यह कर्तव्य नहीं होता कि वह किसीपर सन्देह न करके उसके हृदयको परखनेकी चेष्टा करे? मैंने आपपर जो दोषबुद्धि की, वह क्या मेरा दोष नहीं था? दोष तो था ही। मैं उसे छिपाये रखती। पर आपके स्नेहपूर्ण सद्व्यवहारने आपके सामने मुझे हृदय खोलकर सब बातें कहनेका साहस दे दिया। आप क्षमा करें, मेरी भूलको भूल जायँ।'

जहाँ दोनों ओरसे अपनी-अपनी भूल स्वीकार होती है और दूसरेकी भूल नहीं मानी जाती, वहाँ भूल नहीं रहती और प्रेमका

सुधा-सागर उमड़ पड़ता है । जहाँ केवल दूसरेको ही दोषी साबित करनेकी चेष्टा चलती है, वहाँ भूल बढ़ती जाती है और परिणाम अत्यन्त अनर्थकारी हो जाता है ।

यहाँ तो शुद्ध हृदय थे ही । अंधेरेकी छाया आयी थी, वह भी दूर हो गयी । आनन्दीको उठाकर सुभद्राने हृदयसे लगा लिया । सब ओर आनन्द छा गया ।

सुभद्रा दो दिन रहकर अपने साथ ही आनन्दीको ले गयी । यह बात लगभग पंद्रह साल पहलेकी है । आज तो आनन्दी कई संतानोंकी माता है । घरकी स्वामिनी है । सम्पन्न तथा सुखी है । उसका अपनी ननद तथा ननदके लड़के-लड़कियोंसे बड़ा ही अनोखा प्यार है । वह प्रौढ़ा ननदकी सलाह बिना कोई काम नहीं करती । बार-बार बुलाया करती है । सुभद्रा भी अत्यन्त प्रसन्न है । सुभद्राकी सुशीलता और आनन्दीकी सरलताने नरक बनते हुए घरको स्वर्ग बना दिया । धन्य । —रामदहिन सिंह

डा० व्यासकी महत्त्वपूर्ण मृत्यु

आगरामें ही वहाँके मेडिकल कॉलेजके अवसरप्राप्त प्रिंसिपल डॉ० गोकुलनारायण व्यासका स्वर्गवास २१ फरवरी १९६० को सुबह लगभग पाँच बजे ६५ वर्षकी उम्रमें हुआ था । डाक्टर व्यासने स्वयं इंगलैंडसे डिग्री प्राप्त की थी और उनके द्वितीय पुत्रने, जो वहीं मेडिकल कॉलेजमें रीडर हैं, इंगलैंडमें दो वर्ष रहकर

सर्जनकी एक ऊँची डिग्री प्राप्त की है। कहनेका तात्पर्य यह है कि विदेशसे डिग्री प्राप्त कर लेनेके कारण यह समझा जा सकता है और अधिकतर ऐसा होता भी है कि उनमें तथा उनके कुटुम्बमें विलायती वातावरणकी प्रधानता हो जाती है और ईश्वरके प्रति भावना कम हो जाती है, परंतु स्वर्गीय डाक्टर व्यास तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके तथा श्रीराधिकाजीके अनन्य भक्त थे। स्वर्गीय डाक्टर व्यासके एक निकट-सम्बन्धी (जो आगरा मेडिकल कॉलेजके छात्र हैं) ने उनकी मृत्युके सम्बन्धमें अपने पिताको यह लिखा था—

····नानाका देहान्त कल यानी २१ तारीखको पौने पाँच बजे हुआ। देहान्तके पहले नानाको भगवान्‌के दर्शन हुए। आखिरी समयतक नाना बिल्कुल Conscious (होशमें) रहे और हमलोगोंको बराबर Guide (उपदेश) करते रहे। मरनेके दो मिनट पहले नानाने कहा—'बेटा ! राधिकाजी हमको लेने आयी हैं। उनको बिठाओ।' फिर कहा—'हमको माला दो, हम जप करके उनको बिठाते हैं।' उनको माला दिया गया। उन्होंने आधा मिनटतक जप किया और कहा—'बेटा! राधिकाजी बैठ गयी हैं और अब माला ले लो।' फिर उन्होंने कहा—'अब सुई लगानेकी कोई जरूरत नहीं है। उसे निकाल लो।' तब हमलोगोंने सुई निकाली और आक्सीजन भी हटा दिया। इसके बाद दो तीन हिचकी आयी और देहान्त हो गया। नानाके इच्छानुसार शव वृन्दावनमें इनके गुरुके आश्रममें ले जाया गया।

वहाँ जानेपर वहाँके लोगोंने बताया कि 'यहाँपर ठीक पौने पाँच बजे इतने जोरोंका प्रकाश हुआ कि हमलोग समझ गये कि व्यासजी वृन्दावनवासी हो गये ।' गुरु-आश्रममें ६ दिनोंसे बराबर नानाके लिये अखण्ड कीर्तन हो रहा था । शवको पूरे वृन्दावनमें हर मन्दिरमें घुमाया गया और प्रसादी दी गयी । फिर यमुना-किनारे दाह-संस्कार हुआ । शव जब घरमें था; तब चेहरा बिल्कुल शान्त था, किंतु गुरु-आश्रममें पहुँचते ही चेहरेपर हँसी आ गयी ।

× × × ×

हमारा बड़ा भाग्य था जो हम ईश्वरस्वरूप इतने बड़े पुण्यात्माकी थोड़ी-सी सेवा कर सके ।

—केदारनाथ

आँखकी अनुभूत दवा

मेरे बड़े भाईने मुझे अपनी अनुभूत आँखोंकी दवा बतायी । मैंने स्वयं अनेकोंपर इसका अनुभव किया । दवा सचमुच बहुत काम करती है । तीन तोले सफेद फिटकरी, आठ आनेभर छोटी इलायची और आधा माशा असली नीलाथोथा (तूतीया) तीनोंको खूब अच्छी तरह महीन पीस लो और एक बोतलमें गङ्गाजल भरकर उसमें डाल दो । दस दिनोंतक दिनमें तीन-चार बार बोतलको खूब अच्छी तरह हिलाते रहो और रख दो । दस दिनके बाद दवा बनकर तैयार हो जायगी । आँखोंके छोटे-छोटे रोगोंकी तो बात ही क्या, बिना चेचक (माता) का तीन-चार महीनेतकका

साधारण फूला भी काट देगी । गङ्गाजल कभी बिगड़ता नहीं इसलिये दवा भी कभी नहीं बिगड़ती । जितनी पुरानी होगी उतनी ही अधिक लाभदायक होगी । इतना अवश्य ध्यान रहे कि गङ्गाजल असली हो । नहर या रजवायेका जल न हो । नहीं तो, दवा बिगड़ जायगी । लंबे लेटकर दवा आँखमें डालनी चाहिये और दो मिनट आँखोंको बंद रखना चाहिये । कितने सज्जन कम दीखनेके कारण चश्मा लगाते थे, इस दवाके प्रयोगसे उनके चश्मे छूट गये । गङ्गाजलकी बनी इस दवाको बेचना नहीं चाहिये । '*परहित सरिस धर्म नहिं भाई*' के अनुसार दवा बिना दाम लिये ही सबको देनी चाहिये ।

—श्रीकृष्ण व्यास, पो० किनौनी (मुजफ्फरनगर)

परिस्थितिसे बाध्य

कुछ ही दिनों पहलेकी घटना है । मैं उगाहीके लिये पासके ही कुछ छोटे गाँवोंमें जाकर रात्रिको लगभग ८॥ बजे साइकलपर घर लौट रहा था । मेरी जेबमें ४८०) रुपयेके नोट थे । मैं तेजीसे चला जा रहा था कि अकस्मात् साइकल एक गड्ढेमें गिर गयी । पर कोई खास नुकसान नहीं हुआ, न चोट लगी । लेकिन एक आदमीने मुझे देख लिया और उसने मेरे पास आकर धमकाकर जोरसे कहा—'तुम्हारे पास जो कुछ हो सो तुरंत दे दो । नहीं तो जानसे हाथ धोना पड़ेगा ।' मैं भयसे काँपने लगा । मैंने ४८०) रुपये उसके हवाले किये और किसी तरह जान बची

समझकर साइकलपर सवार होकर दौड़ा।

कुछ ही दूर गया होऊँगा कि जोरोंसे आवाज सुनायी दी–'भैया! जरा ठहरना।' मैंने मुड़कर देखा, वही पुकारता हुआ मेरी ओर दौड़ा आ रहा था। मैं डर गया, सोचने लगा शायद साइकल भी छीनना चाहता है। मेरी चाल कुछ धीमी हो गयी। इतनेमें तो वह समीप आ पहुँचा। वह मेरे पैरोंमें लोट गया और ४८०) वापस लौटाते हुए क्षमा-प्रार्थना करने लगा! बोला—'भाई! मैं चोर-लुटेरा हूँ, मुझे पुलिसमें ले चलो।' मैं कुछ समझ नहीं पाया। अभी-अभी जिसने जान लेनेकी धमकी देकर रुपये छीने, वह कुछ ही क्षणों बाद इतना नम्र होकर रुपये क्यों लौटा रहा है। मैंने इसका रहस्य जानना चाहा।

उसने कहा, 'तुम मेरे घर चलो' बड़ा आग्रह किया। मैंने बहाना बनाकर इन्कार कर दिया। तब उसने बताया—'भैया! मैं बड़ा नीच काम करता हूँ, पर जब करता हूँ, तब मेरी आत्मा मुझे कोसती तथा बिल्कुल इन्कार करती है। पर मैं मजबूर हो जाता हूँ दुष्कर्म करनेके लिये। घरमें आठ-दस आदमी हैं, खाने-पीनेका कोई भी साधन नहीं है। धंधा-रोजगार कुछ है नहीं; 'मरता क्या न करता' वाली कहावत है। भूखा इन्सान कुछ भी कर बैठता है, पर इस प्रकारके कर्म करनेमें चित्तमें बड़ी वेदना भी होती है……।''

मैंने सोचा—सचमुच भूखा इन्सान कुछ भी कर बैठता है। वह चोरी-डकैतीको बुरा समझता है, पर परिस्थिति उसे मजबूर कर

देती है। समाज यदि इन भूखोंके अन्नकी व्यवस्था कर दे, इन्हें धंधा मिल जाय तो वे भले आदमी बने रह सकते हैं। चोर भी हम-जैसे आदमी ही होते हैं और उनके भी हृदय होता है। मनुष्यको चोर बनानेवाला अधिकांशमें समाज है।

मैंने उसको बुलाया। एक आटाचक्कीमें उसकी नौकरी लग गयी। वह मजेमें काम करता है और मुझे तो मनुष्यके रूपमें देवता दीखता है।

—बंशीलाल एम्० अग्रवाल

शरीरका छोटा, पर मनका महान्

यह अफ्रिकाका प्रसंग है। कुपी (ठिगना) उसका नाम है। पिछले लगभग पंद्रह वर्षोंसे हमारे आफिसमें चपरासीका काम करता है।

एक बार तिजोरीकी चाभी भूलसे उसके अंदर ही रह गयी। तिजोरीमें तीस हजारके नोट थे।

हमारा कुपी रातको भी आफिसके बाहर ही सोता था। यही उसका घर। आफिस बंद भी वही करता और आफिसकी चाभी उसीके पास रहती। तिजोरीमें चाभी देखकर उसने कौतूहलसे खोलकर देखा तो उसे तिजोरीमें शिलिंगके नोट-ही-नोट दिखायी दिये! अच्छे-अच्छे लोगोंको भी लुभा देनेवाला प्रलोभन था। डेढ़ सौ शिलिंगकी नौकरी करनेवालेके लिये तो जीवनभरकी कमाई थी।

परंतु कुपी कुछ दूसरी ही मिट्टीका मानव था। उसने उस रातको आफिसके बाहरके बदले तिजोरीके पास आसन जमाया और रातभर वहीं पहरा देता बैठा रहा।

सबेरे मैं आफिस गया तब चाभी मेरे हाथमें देते हुए कुपी बोला—'सेठ! तिजोरीकी चाभी तू अंदर ही भूल गया था। इसमें तो तमाम नोट-ही-नोट भरे हैं। तू खोलकर गिन ले सब ठीकसे।'

मैं तो भौंचक-सा रह गया। मुझे ख्याल आया कितनी बड़ी भारी भूल हो गयी थी मुझसे। मैंने तिजोरी खोलकर देखा तो नोटोंके बंडल ज्यों-के-त्यों बँधे पड़े थे। मैं बिना गिने ही तिजोरीका दरवाजा ढकने लगा, परंतु कुपी क्यों मानता? उसने कहा—'सेठ! पहले रकम गिन ले, फिर बंद कर?'

अच्छे-अच्छे पुरुषोंके मनको विचलित कर दे, ऐसी लक्ष्मीको ठोकर मारकर जिसने हाथसे छूनेतकका लालच न किया हो, नोट गिनकर उसकी ईमानदारीपर अविश्वास करनेकी धृष्टता करूँ, यह मेरे लिये कैसी बुरी बात होगी। अतएव मैंने कहा—'तुझे नोट ही ले जाने होते तो तू रातको रुकता ही क्यों? पर अच्छा यह तो बता कि इतनी बड़ी रकम तुझे यों ही मिल रही थी; फिर तूने ली क्यों नहीं?'

किसी तत्त्वज्ञकी तरह सिर हिलाकर उसने कहा—'सेठ! बेईमानीका पैसा टिकता नहीं। ऐसे हरामके पैसेकी अपेक्षा

*

मेहनतकी कमाई ही मेरे लिये बहुत है । ईश्वर देखनेवाला मौजूद है । मैं तो अब बूढ़ा हो गया हूँ, एक पैर यहाँ और दूसरा कब्रमें । इस उम्रमें यह सब करना तो 'धोलेमें धूल डालना है ।'

शरीरका छोटा पर मनका महान् । (अखण्ड आनन्द)

—हसमुख शाह

ईमानदारी

घटना अभी पाँच ही वर्ष पूर्वकी है । व्यक्ति यदि सत्यनिष्ठ है तो विपत्ति उसे विचलित नहीं कर सकती । वह ईमानदारीका कभी परित्याग नहीं कर सकता । यही सच्चा मानव-धर्म है । सत्य और ईमानदारीसे अपने पथपर चलते रहना ही मानवकी विशेषता होनी चाहिये ।

सागर जिलेके खुरई नामक स्थानमें बिहार प्रदेशके एक सज्जन ब्लॉक डेवलपमेंट (Block Development) दफ्तरमें अधिकारी थे । श्रीमान् वासुदेवरावजी इस स्थानके एक प्रतिष्ठित वकील हैं । स्वभावसे सहृदय, शान्त और जनहितैषी हैं, लोकप्रिय हैं ।

एक दिन लगभग ११ बजे बिहारी सज्जन वकील साहबके घरपर आये । इस समय वकील साहब कचहरी जानेकी जल्दीमें थे । वकील साहबसे थोड़ा-सा परिचय होनेके कारण उक्त बिहारी सज्जनने डरते-डरते कहा—'वकील साहब ! मैं एक परदेशी हूँ और इस बस्तीमें अपरिचित होनेके कारण किसी अन्यसे आर्थिक

सहायता प्राप्त कर नहीं सकता। इस समय मैं विपत्तियोंका सताया हुआ हूँ। यदि आप मेरी सहायता कर सकें तो मैं आपका जन्मभर आभारी रहूँगा। आज मुझे याचना करते बड़ी लज्जा आ रही है, पर मैं लाचार हूँ।'

अन्तर्हृदयसे निकली हुई इस परदेशीकी आवाजने वकील साहबको बहुत प्रभावित किया। वे 'ना' नहीं कर सके और तकावी भरनेको जो रुपया कचहरी ले जा रहे थे, खीसेसे निकाल-कर उन्होंने उनके हाथपर रख दिया। कहा—'महाशय! दस-दसके ये सौ नोट हैं। आप चिन्ता न कीजिये। इससे आपका काम चल जायगा।'

बिहारी सज्जनने कहा—'वकील साहब! इतनी रकम आप दे रहे हैं, कोई कागज लिखवा लीजिये। मुझ परदेशीका क्या ठिकाना।'

बीचमें ही वकील साहबने कहा—'महाशय! कागज लिखवाना ईमानदारीका प्रमाणपत्र नहीं। सच्चे व्यक्तिके लिये कागज-पत्रका बन्धन नहीं है। आपके हृदयसे निकली हुई आवाज यह विश्वास दिलाती है कि आप ईमानदार मनुष्य हैं। ईश्वरपर विश्वास कीजिये।' यह कहकर वकील साहब उक्त महाशयको विदा करके कचहरी चल दिये।

कुछ ही महीनों बाद उक्त सज्जनका स्थानान्तरण रामपुरकी तरफ हो गया। बेचारे उपकारके बोझसे दबे थे। पर अभी पैसा इतना न था कि वापस करके जाते। शर्मके मारे वकील साहबसे मिले भी नहीं!

उनके अचानक चले जानेपर कुछ मित्रोंने वकील साहबपर तानाबाजी की। कहा—'आप बड़े भोले हैं, वकील साहब, जो परदेशीको रकम दे बैठे हैं। आपके पास कोई लिखित कागज भी नहीं है, जो आप वसूल कर सकें।' वकील साहबने कहा—'मुझे पूर्ण विश्वास है उसकी ईमानदारीपर। विपत्तियोंने उसे लाचार बना रक्खा है। एक दिन आयेगा जब मेरी बात सत्य निकलेगी।'

तीन-चार वर्ष बीत गये। अचानक एक दिन पोस्टमैनने वकील सहबके घरपर आवाज लगायी—'वकील साहब! आपका एक हजारका बीमा है।' वकील साहब उसे देखकर दंग रह गये। वही पुरुष हैं भेजनेवाले। पटना जिलेके एक गाँवसे बीमा भेजी गयी है। लिफाफा खोला तो उसमें दस सौ-सौके नोट थे और एक पत्र था। पत्रमें लिखा था—'वकील साहब! मुझे दुःख है कि मैं आपकी रकमको जल्दी न चुका सका। आपकी आर्थिक सहायताने मेरे कष्टोंका निवारण किया। दुःख है कि मेरी नौकरी छूट गयी है और मैं अपने घरपर आ गया हूँ। मैंने अपने घरका काम सँभाल लिया है। खुरई छोड़ते समय शर्मके कारण आपसे मैं मिल नहीं सका। आप मुझे क्षमा करेंगे। आपका—'

पत्रको पढ़कर वकील साहबने उस व्यक्तिकी ईमानदारीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। मित्रोंको वह पत्र दिखलाया और कहा, 'देखिये, वह कितना ईमानदार और सच्चा है।'

—नीलकंठ नारायण सप्रे

मरते समय दी हुई पिताकी आज्ञासे पुत्रने पिताका पुराना ऋण चुकाया

अभी हालकी घटना है। श्रीफूलचंदजी टोकमानी आजकल वाराणसीमें रहते हैं। स्वर्गीय श्रीनन्दलालजीमें इनके फर्मके तीस वर्ष पहलेके रुपये लेने थे। उस दिन अकस्मात् श्रीनन्दलालजीके सुपुत्र श्रीलक्ष्मीनारायणजीका पत्र तथा ४०६१।) (चार हजार इकसठ रुपये चार आने) का ड्राफ्ट श्रीफूलचंदजीको मिला। मारवाड़ी भाषामें लिखे पत्रका हिंदी अनुवाद यह है——

'पूज्य श्रीफूलचंदजीसे लक्ष्मीनारायणके प्रणाम। इस पत्रके साथ रुपये ४०६१।) का एक ड्राफ्ट भेजा जा रहा है। ये रुपये आपके गोपीरामजी रामचन्द्र फर्मके हमारे नन्दलालजी चण्डीप्रसाद फर्ममें बहुत दिनोंसे बाकी थे। पूज्य पिताजी नन्दलालजी स्वर्गवासी होनेके समय आपके रुपये भेज देनेके लिये कह गये थे। मैं हाथ जोड़कर आपसे क्षमा माँग रहा हूँ! क्योंकि आपके रुपये बहुत दिन रखनेके बाद अब भेज रहा हूँ। आप स्व० पिताजीको ऋणमुक्त कर दें और हमलोगोंको आशीर्वाद देकर संतोष प्रदान करें। पत्रका उत्तर तथा ड्राफ्टका प्राप्ति-संवाद अवश्य लिखें। अधिक क्या लिखा जाय। आप मायत हैं। ज्ये० शु० ५।२०१७।'

इतने दिनोंके बाद स्वर्गस्थ होनेके समय दी हुई पिताकी आज्ञा मानकर पिताका पुराना ऋण चुकाना आजके युगमें आदर्श है। इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। —डूँगरसीदास लोहिया

मानस-मन्त्रसे रोगमुक्ति

घटना हालकी है और यों है—मैं एक प्रतिष्ठित कायस्थ-कुलकी वधू हूँ। मुझे एक उच्च कुलके उत्साही एवं कर्मठ पुरुषकी सहगामिनी बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं अनुकूल सङ्गी पाकर फूली-फूली रहने लगी, किंतु विधाताने मुझे ब्याहके साल ही रोग-ग्रस्त कर दिया। रोग भयानक ही था। पहले तो मैं अपने उन देव-से रोग छिपाती रही, जो मुझे नित्य-निरन्तर स्वस्थ और सुखी देखना चाहते थे, किंतु भला वह रोग मेरे दबाये क्यों दबने लगा। दिनानुदिन व्याधि आँधी-सी बढ़ती गयी और मेरे देवको जो एक अच्युत वृक्षके सदृश थे, उसने झकझोर दिया। वे मुझे देख दुखी हो गये। जहाँतक उनसे हो सकता था, उन्होंने डाक्टरोंसे इलाज करवाया, वैद्योंकी दवा करवायी, किंतु अपेक्षित लाभ नहीं हो सका, बल्कि व्याधिका रूप और भी भयंकर होने लगा। इस तरहकी परिस्थितिमें मैं निराश हो गयी और मरणकी कामना करने लगी।

मरणकी कामनामें दो हेतु थे—एक तो मैं रोगसे ऊबकर मरना चाहती थी, दूसरे मैं उनके सुखकी राहको प्रशस्त बना देना चाहती थी। पर मुझे गर्व है और मेरा रोम-रोम सराहना कर रहा है, मेरे उन अपने देवकी धैर्य-क्षमतापर। जब-जब वे अपने कामसे फुरसत पाकर मेरे पास आते मुझे धैर्य बँधवाते, सान्त्वना देते और स्वयं दवा आदि खिलाते।

गत वर्ष नवम्बरमें वे घर आये। उनके पास उस महीनेका 'कल्याण' था, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकारके मानस-मन्त्र भिन्न-भिन्न

कार्योंकी सिद्धिके लिये छपे थे। उन्होंने मुझे मन्त्र दिखलाया और मुझसे—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

——का जप करनेको कहा। रोग-शान्तिके लिये यही मन्त्र लिखा था, किंतु मेरी हालत इतनी नाजुक हो गयी थी कि मैंने नियमपूर्वक जप करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। तब मेरे बदले वे स्वयं नियमपूर्वक जप करने लगे। भगवान् भक्तवत्सल हैं, वे भक्तोंकी आर्त पुकारको तुरंत सुनते हैं। जप करते एक माह भी नहीं बीता होगा कि मेरी हालत सुधरने लगी और आज तो मैं नीरोग तथा अच्छी तंदुरुस्त हूँ। इससे मेरी भक्ति भगवान्‌के प्रति विशेष बँध गयी है। भगवन्नाम-जप किये बिना मैं नहीं रह सकती! भक्तवत्सल भगवान् धन्य हैं।

—विपुला सिन्हा

धूलमें छिपा हीरा

मेरे एक व्यापारी मित्र कुछ दिनों पहले कपड़ेकी उगाही करने राजपुर गये थे। वहाँ उनका आँखों देखा यह प्रसङ्ग उन्हींके शब्दोंमें यहाँ उपस्थित कर रहा हूँ——

राजपुरसे दुपहरको चलनेवाली बससे मुझे धंधुका जाना था। मैं बस स्टैंडपर पहुँचा। उस समय बसके खुलनेका समय हो गया था, इसलिये तुरंत ही टिकट लेकर मैं बसमें जा बैठा। मेरे पीछे ही धंधुकाके एक प्रसिद्ध कंट्राक्टर बसपर सवार होकर मेरे बगलकी

सीटपर बैठ गये। हम दोनोंमें साधारण जान-पहचान थी; इससे हम बात करने लगे। हमलोग बातोंमें लग रहे थे कि हमारे कानोंमें ये शब्द पड़े—'लुच्चे, बदमाश, नालायक। बसमें सैर करनेका शौक चर्राता है और पैसे खरचनेको हैं नहीं। चोट्टे कहींके। पीछे लटकते जा रहे हो, किसी दिन खुद मरोगे और मेरी भी नौकरी खोओगे!' मैंने नजर घुमाकर देखा तो बसके पीछे सामान चढ़ानेकी सीढ़ीपर एक गरीब छोकरा खड़ा था और उसे कंडक्टर इस प्रकार धमका रहा था। उसके उत्तरमें वह हमारी ओर अँगुली दिखाकर कुछ कहता था, परंतु खड़खड़ाती हवा और बसकी आवाजमें उसके शब्द सुनायी नहीं पड़ते थे। उन कंट्राक्टर सज्जनने भी पीछे घूमकर देखा और कहा—'अरे, यह तो वह बस-स्टैंडवाला मजदूर छोकरा है। इसीने मेरी बेग चढ़ायी थी। फिर उन्होंने कंडक्टरकी ओर मुँह करके कहा—'दरवाजा खोलकर इसे भीतर ले लो न!'

'ऐसे हरामखोरोंको अंदर लेनेकी जरूरत नहीं है। अगले स्टेशनपर ही मैं इसे नीचे उतार दूँगा। यह कहीं पैसा देनेवाला है!' कंडक्टरने यह जवाब दिया। कंट्राक्टर सज्जन चुप हो गये।

कुछ ही देरमें अगला गाँव आ गया। बस रुकी कि तुरंत ही वह मजदूर लड़का अंदर घुस आया और उन कंट्राक्टर सज्जनके सामने एक बटुआ रखकर बोला—'सेठजी! आप मजदूरीके पैसे देकर जब बसपर सवार हुए, तब बटुएको जेबमें डालते समय आपके हाथसे यह नीचे गिर गया था। देख लीजिये—इसमें सब कुछ ठीक है न!' तुरंत ही कंट्राक्टरने जेबमें हाथ डालकर देखा तो बटुआ

नहीं था। उन्होंने लड़केके हाथसे बटुआ लेकर खोलकर देखा तो उसमें आठ सौ रुपयेके नोट तथा और खुदरा सब सुरक्षित थे। वे लड़केको पाँच रुपये इनाम देने लगे, तब उसने इन्कार करते हुए कहा—'मुझे यह नहीं चाहिये, मुझको अपने रोजके खर्च लायक मजदूरी मिल जाती है। पर मेरे बसके किरायेके पैसे इन कंडक्टर साहबको दे दीजियेगा।' इतना कहकर वह फुर्तीसे नीचे उतर गया। (अखण्ड आनन्द)

—बालकृष्ण जाजल

कीर्तन तथा दीन प्रार्थनाका अद्भुत चमत्कार

सन् १९४६-४७ की बात है। अजयगढ़ राज्यमें प्लेगके प्रबल प्रकोपके कारण हमलोग देवेन्द्रनगर तहसीलमें सेठ श्रीबलदेव प्रसादजीके एक घरमें ठहरे थे। अजयगढ़ नगरके और भी पाँच-सात सौ नागरिक भागकर देवेन्द्रनगर पहुँचे और जहाँ-तहाँ टपरियाँ बनाकर समय काटने लगे।

कुछ दिनों बाद जब यहाँ भी चूहे मरने लगे और साथ ही कुछ व्यक्ति प्लेग-रोगाक्रान्त भी होने लगे, तब श्रीमान् अजयगढ़-नरेशके आदेशानुसार सब लोगोंने जहाँ-तहाँ दूर देहाती क्षेत्रोंमें जाना प्रारम्भ कर दिया। तदनुसार हम सब भी चलनेको तैयार हुए, किंतु सवारी न मिल सकनेके कारण रुक जाना पड़ा। इसी बीचमें घनघोर वर्षा होने लगी। अंधड़-तूफानका दौर जारी हो गया, साथ ही ओले भी बरसने लगे। दूसरी ओर प्लेग-पीड़ित लोगोंकी मृत्युके समाचार फैलने

लगे। तत्कालीन अजयगढ़-युवराज श्रीमान् देवेन्द्र विजयसिंहजीके आदेशसे उस समयके अजयगढ़के चीफ रेवन्यू अफसर मुंशी लालजीसहाय वर्माजीने देवेन्द्रनगरसे 'दग्धा' जानेके लिये हमें एक बैलगाड़ीका प्रबन्ध कर दिया।

तदनन्तर प्लेगसे भयभीत हुए हम सब वहाँसे दग्धा ग्रामकी ओर चल दिये। प्रथम दिन हम सबने लुहरगाँवमें विश्राम किया, दूसरे दिन सलेहामें। इन दोनों दिनोंमें वर्षा शान्त रही, किंतु तीसरे दिन जैसे ही हमारी बैलगाड़ी चली, वैसे ही भयंकर गर्जनाके साथ वर्षा होने लगी, फिर भी हमलोग चलते गये। लेकिन सायंकाल होते ही हमारा गाड़ीवान रास्ता भूल गया। फलस्वरूप हम सब एक निर्जन वन-प्रदेशमें भटक गये। मार्ग ऊबड़-खाबड़ था और जहाँ-तहाँ जंगली जानवरोंके विकट शब्द हम सबको भयभीत कर रहे थे प्रयत्न करनेपर भी मार्ग प्राप्त नहीं हो रहा था। इस स्थितिमें मैं श्रीगिरिराजधरनजीका ध्यान करने लगी और फिर 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' मन्त्रका कीर्तन करने लगी। मेरे साथ मेरे पति तथा परिवारके चार-पाँच व्यक्ति भी दीन-भावसे कीर्तनमें संलग्न हो गये। गाड़ी रोक दी गयी और हम सब उन अत्यन्त अन्धकारपूर्ण रात्रिमें एक मधूक वृक्षके नीचे कीर्तनमें खो गये। मुझे पूर्ण स्मरण है, जैसी तल्लीनता और दीनता उस रात्रिके तीन-चार घंटेके कीर्तनमें आयी, वैसी फिर आज-तक नहीं आयी। मेरे विश्वासके अनुसार हम सबकी दीन पुकारको

श्रीगिरिराजधरनने सुन लिया और हम सबका उद्धार करनेके लिये उस निर्जन वनमें भयकर अन्धकारमें एक बैलगाड़ीके साथ चार-पाँच व्यक्तियोंको भेज दिया। वे कुपथमें अपनी बैलगाड़ी लिये आ रहे थे। हम सबने उन्हें डाकू समझा और पुनः भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे परित्राणके हेतु दीन प्रार्थना की। इतनेमें वे सब हमारे समीप आ गये। उन्होंने अपनी लालटेन जलायी, तम्बाकू पी और फिर वे मेरे पतिदेवसे बातें करने लगे। इसके बाद उन्होंने हम सबको आश्वासन देते हुए 'दग्धा'तक पहुँचानेका वादा किया, जिससे हम सबको विशेष धैर्यकी प्राप्ति हुई और हम सबने उन्हें 'नररूपमें हरि' ही मान लिया। तत्पश्चात् वे लोग अपने गन्तव्य स्थानको न जाकर हमारे साथ दग्धाकी ओर चले। आगे उनकी गाड़ी थी और उसके पीछे हमारी गाड़ी। हमलोगोंने लगभग एक घंटेमें उक्त वन्य-प्रदेशको पार कर लिया और फिर दग्धा ग्रामकी सुप्रसिद्ध 'पीली कगार'पर आ गये। उस समय सुबह हो रहा था और प्रकाश फैल रहा था। साथ ही वहाँसे दग्धा ग्रामके घर भी स्पष्ट दिखायी देने लगे थे।

'पीली कगार'तक पहुँचाकर वे सब पुनः उसी वनकी ओर चले गये और फिर उनका कोई पता न चला। वे न मालूम कौन थे। परोपकारी मानवके रूपमें श्रीकृष्णचन्द्र ही तो थे; जो हम सबकी आर्त्त पुकार सुनकर सहायतार्थ आये थे और करके चले गये। ऐसी बातें करते हुए हम सब दग्धाके प्रसिद्ध जागीरदार पं० रामनाथ भट्टजीके द्वारपर पहुँच गये।

—लक्ष्मीदेवी तैलंग

वात्सल्यपूर्ण हृदय

बूढ़े लक्ष्मीरामके हाथमें कुंकुमकी शीशी, काजलकी डिब्रिया, रबड़के कड़े और नाईलोनकी रीबन देखकर हँसते-हँसते मैंने पूछा—'अरे यह क्या है ? क्या घरवालोंके लिये यह सब लिये जा रहे हो ?' लक्ष्मीराम हमारे आफिसका चपरासी है—नम्र, विवेकी, भला और भोला।

खुली हँसी हँसते हुए उसने कहा—'अरे नहीं; इनसे सजकर अब घरवाली कहाँ जायगी ? यह तो लड़की बहुत दिनोंसे चीजें मँगवा रही थी, पर आज याद रखकर नहीं ले जाता तो काम चलता नहीं; बड़ी मिजाजवाली है; मनकी न हो तो तुरंत चिढ़ जाय।'

मैंने नयी बात सुनकर कहा—'परंतु तुम्हारे तो एक भी लड़की नहीं थी।'

'अरे लड़केकी बहू है न ! उसके लिये।'

मेरा आश्चर्य और बढ़ गया। मैंने कहा, 'तुम्हारा लड़का तो अभी कुआँरा है।'

लक्ष्मीरामने कहा—'सगाई तो कभीकी हो गयी थी, अभी विवाह बाकी है।'

'पर बहू पहले ही तुम्हारे घर रहती है ?' मैंने पूछा। उसने विस्तारसे सारी बातें समझायीं—

'लड़केकी सगाई बचपनमें ही कर दी थी। बहूकी कमनसीबी-से सगाई होनेके बाद एक ही सालमें उसके माँ-बाप दोनों मर गये। नजदीकका सम्बन्धी कोई था नहीं। एक दूरका मामा था, वह बड़ा स्वार्थी था। नन्हीं-सी गरीब लड़कीके पालन-पोषणके लिये वह तैयार नहीं हुआ। मुझसे नन्हीं-सी बहूका दुःख नहीं देखा गया। ससुरके नाते उसके बापके जितना ही अपना कर्तव्य मुझे दिखायी दिया। मैं लड़कीको घर ले आया और मैंने अपने पेटकी लड़कीको तरह ही प्यार-दुलारसे ही उसको पाला-पोसा। वह मुझे 'बापू' ही कहती है। समझदार हुई, तबसे धीरे-धीरे उसने घरका सारा काम-काज सँभाल लिया। जरा मिजाजवाली है, पर इतनी होशियार और समझदार है कि मुझे घरकी जरा भी चिन्ता नहीं रहती। लड़का बाहर नौकरी करता है और घरवाली बरसोंसे अपंग-सी हो रही है। इस बुढ़ापेमें यह बहू ही मेरे लिये सच्चा सहारा है। सबकी सँभाल यही करती है।

मैं उसको किसी दिन भी नाराज नहीं करता और कभी उसके वचन नहीं टालता। उसको जिस चीजकी जरूरत होती है, वही ला देता हूँ। पूर्वजन्मका कोई बड़ा पुण्य होगा, तभी ऐसी रत्न-जैसी बहू मेरे घर आयी है। अब मुझे जीनेका कुछ भी मोह नहीं रहा। इस लड़कीके लिये ही जीना चाहता हूँ। मुझे लगता है कि इन दोनोंका विवाह करके इन्हें सुखी देखकर निश्चिन्त मरूँगा तो मुझे सद्गति मिलेगी।' (अखण्ड आनन्द) —अनन्त जे शाह

गरीबकी ईमानदारी

गत वर्षकी बात है। मैं और मेरे भाई साहब श्रीकेशवप्रसाद चौधरीजी आरा बैंकसे पंद्रह हजार रुपयेका चेक भुनवाकर थैलीमें रुपये रक्खे साइकिलद्वारा घर आ रहे थे। हम दोनों भाई बड़ी तेजीसे साइकिल चला रहे थे। रास्तेमें चाचा संतलालजी 'वियोगी' मिल गये। कुछ बातें हुईं। फिर हमलोग कुछ दूर आगे बढ़कर नाश्ता करनेके प्रयोजनसे होटलमें गये। वहाँ श्रीअनन्तलालजी एवं बाबा गुलजारजी मिल गये। नाश्ता करनेके बाद हमलोग तेजीसे चलकर घर आ गये। घरपर आकर रुपयेकी थैली देखते हैं तो थैली नदारत थी। हम दोनों भाइयोंके होश-हवाश उड़ गये। पिताजीने हमलोगोंके आते ही पूछा—'रुपये मिल गये?' हमलोगोंने रुपये खो जानेकी बात कही। इसपर पिताजी नाराज हुए; पर नाराज होकर करते ही क्या? फिर उन्होंने पूछा कि 'रास्तेमें किन-किनसे भेंट हुई थी।' हमलोगोंने कहा—'रास्तेमें

चाचा संतलालजी एवं बाबा गुलजारजी तथा श्रीअनन्तलालजी मिले थे।' पिताजी इतना ही पूछकर रह गये!

मेरे भाई साहब श्रीकेशवप्रसादजी रुपयेकी आशा छोड़कर भी एक बार तलाश करनेके लिये साइकिल लेकर चल पड़े। वे साइकिलद्वारा बड़ी तेजीके साथ जा रहे थे। हमलोगोंने जहाँ बैठकर नाश्ता किया था, वहींका एक नौकर 'सिंघासन' था, रुपयेकी थैली उसीको मिली थी। इनको देखते ही उसने बड़े जोरके साथ चिल्लाकर कहा--'बाबूजी! अपनी थैली लेते जाओ।' सुनते ही एकाएक शरीरमें चेतनाशक्ति आ गयी और आकर अपनी थैली उससे ले ली। गिननेपर उन्हें ज्यों-के-त्यों पूरे रुपये मिले।

उस गरीबकी इस सचाई—ईमानदारी तथा परोपकार वृत्तिको देखकर मेरे भाई साहब गद्गद हो गये।

मेरा मुरझाया मुखकमल खिल उठा। मेरा रोम-रोम उसकी ईमानदारी तथा मानवताके उपकारसे दब गया। मेरे भाई साहबके बहुत दबाव डालनेपर उसने पचास रुपये स्वीकार किये। मैं उस गरीबकी ईमानदारी और सचाईको देखकर आश्चर्यचकित रह गया। कोई बड़ा आदमी होता तो शायद ही इस लोभसे अपनेको बचाता।

—कन्हैयालाल चौधरी एम्० एस्-सी०, सा० रत्न

चोर भी हम-जैसे आदमी होते हैं

'सचमुच भूखा इन्सान कुछ भी कर बैठता है। वह चोरी-डकैतीको बुरा समझता है, पर परिस्थिति उसे मजबूर कर देती है। समाज यदि इन भूखोंके लिये अन्नकी व्यवस्था कर दे, उन्हें धंधा मिल जाय तो वे भले आदमी बने रह सकते हैं। चोर भी हम-जैसे आदमी ही होते हैं और उनके भी हृदय होता है। मनुष्यको चोर बनानेवाला अधिकांशमें समाज है।'

(इसी पुस्तकसे)